ओ३म्

आर्य जगत्

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

इस अंक का मूल्य – 2.00 रुपये

रविवार, 14 अक्टूबर 2012

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा का साप्ताहिक पत्र

सप्ताह रविवार 14 अक्टूबर, 2012 से 20 अक्टूबर, 2012

आ. कृ. 14 – ● वि० सं०–2069 ● वर्ष 77, अंक 27, प्रत्येक मगंलवार को प्रकाश्य, दयानन्दाब्द 189 ● सृष्टि–संवत् 1,96,08,53,113 ● इस अंक का मूल्य – 2.00 रुपये

वैदिक मोहन आश्रम हरिद्वार में वैदिक चेतना शिविर

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा, नई दिल्ली के तत्वाधान में डी.ए.वी. कॉलेज मैनेजिंग कमेटी, नई दिल्ली के प्रधान आर्यरतन श्रीमान पूनम सूरी जी की प्रेरणा से एक दिवसीय वैदिक चेतना शिविर का आयोजन किया गया। इस शिविर का उद्देश्य वर्तमान व भविष्य निर्माता और समाज में नैतिकता का पाठ पढ़ाने वाले शिक्षणगण के चारित्रिक उत्थान व उन्हें श्रेष्ठ आर्य बनाना था।

शिविर में डॉ. अजय ठाकुर जी, डॉ. विनीत त्यागी जी, श्री पी.सी.पुरोहित जी, श्री यशवीर जी, डॉ. दिनेश शास्त्री जी, डॉ. सुरिन्द्र कुमार शर्मा जी, श्री धनी राम जी मुख्य वक्ता रहे। शिविर में डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल, लॉरेंस रोड, अमृतसर के पन्द्रह अध्यापक एवं अध्यापिकाओं सभी वक्ताओं ने इन छः दिनों के शिविर में भिन्न–भिन्न विषयों पर अपने विचार प्रकट किए। स्वामी दयानंद जी की जीवन शैली,

उनकी घोर तपस्या व कठोर परिश्रम द्वारा दयानंद ट्रस्ट की स्थापना एवम् पाखंड खण्डिनी पताका आदि के बारे में विस्तृत रूप से बताया गया। आदर्श अध्यापक के क्या गुण होने चाहिएँ तथा वेदों के मंत्रों के उच्चारण, उनका भावार्थ, वैदिक संस्कृति, ओ३म् एवम् हवन को विधिवत् करने के महत्व को विस्तार से बताया गया।

इस शिविर में भाग लेने वाले प्रमाण पत्र दिए गए।

डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल लॉरेंस रोड, अमृतसर की वरिष्ट अध्यापिका श्रीमती सरिता सचदेवा को प्रथम पुरस्कार के तथा श्रीमती शिप्रा शर्मा को द्वितीय पुरस्कार दिया गया।

अबोहर में शिक्षकों को दी गई प्रेरणा

ए.ल.आर.एस. डी.ए.वी. सी सै. मॉडल स्कूल में शिक्षक के लिए एक कार्यक्रम का आयोजन किया गया। कार्यक्रम की मुख्यातिथि स्कूल की प्रबंधक व डी.ए.वी. शिक्षा महाविद्यालय की प्राचार्या डॉ. श्रीमती वनिता सिंह थी। विद्यालय की कार्यवाहक प्राचार्या श्रीमती सुनीता सहगल द्वारा आए हुए सभी अतिथियों का स्वागत किया गया शिक्षकों की भूमिका महत्व पर प्रकाश डाला गया।

अपने सम्बोधन में डा. वनिता सिंह ने कहा शिक्षक का स्थान समाज में सबसे महत्वपूर्ण व्यवसाय माना जाता है। व समाज भी अध्यापक से श्रेष्ठ आचरण की आकांक्षा रखता है। उन्होंने कहा कि एक कोरी स्लेट रूपी बालक के मन को शिक्षक ही अलग–अलग रूप देकर उसे सशक्त मानव बनाता है। अध्यापक–अध्यापिकाओं द्वारा कर्त्तव्य बद्धता की शपथ ग्रहण की गई। विभागों के मुखियों द्वारा उन्हें शपथ ग्रहण करवाई गई।

अध्यापक–अध्यापिकाओं द्वारा मनोरंजक कार्यक्रम प्रस्तुत किया गया। श्रीमती प्रवीण मोंगा को विद्यालय अपनी पच्चीस वर्ष की अमूल्य सेवाएँ देने पर स्मृति चिन्ह भेंट कर व दोशाला ओढ़ा कर सम्मानित भी किया गया।

सुपरवाइजर श्रीमती मंजू डोडा द्वारा आए हुए सभी अतिथयों का धन्यवाद किया गया। व मंच संचालन हिन्दी विभाग के अध्यापक नीरज शर्मा द्वारा निभाया गया।

आर्य युवा समाज ने तुलसी के पौधों का वितरण किया

आर्य समाज के सिद्धान्तों पर आधारित डी.ए.वी. शिक्षण संस्थाएँ निरन्तर वातावरण को हरा–भरा बनाए रखने व प्राकृतिक वैभव के संवर्धन के लिए सदैव तत्पर व समर्पित रहती हैं। आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा, नई दिल्ली के माननीय अध्यक्ष श्री पूनम सूरी जी की सद्प्रेरणा से आर्य युवा समाज, डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल, पटियाला द्वारा विद्यार्थियों, अध्यापकों व अभिभावकों में तुलसी के 500 पौधों का निःशुल्क वितरण किया। वितरण से पूर्व स्कूल परिसर में वैदिक पद्धति से हवन आयोजित किया। विद्यार्थियों को तुलसी के पौधे की स्वास्थ्य की दृष्टि से महत्ता प्रतिपादित करते हुए स्कूल स्कूल प्राचार्य एस.आर. प्रभाकर ने बताया ''तुलसी एक अमूलय औषधि है; इसके नित्य प्रयोग से रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है। यह रोगाणुओं को दूर भगा देती है। भारतीय सांस्कृतिक व धार्मिक दृष्टि से भी तुलसी का सर्वाधिक महत्त्व है। आज हम ''सर्वे सन्तु निरामया:'' की कामना से लोगों को आयुर्वैदिक जड़ी–बूटियों के प्रयोग हेतु प्रेरित करने के लिए प्रत्येक घर में तुलसी का पौधा पहुँचा रहे हैं।

स्कूल परिसर में हिन्दी समाचार पत्र 'दैनिक भास्कर' के 'एक पेड़–एक जिन्दगी'' प्रकल्प के अन्तर्गत 'ईको क्लब' के विद्यार्थियों ने अशोक वृक्ष लगाए। इसी प्रकार 'अजीत समाचार पत्र' के ''हरियाली'' अभियान के अन्तर्गत डी.ए.वी. ग्लोबल, स्कूल पटियाला में अनेक छायादार व प्राकृतिक शोभा प्रदान करने वाले फूलदार पौधो लगाए गए। इस कार्य में रोटरी इन्टरनेशनल क्लब, पटियाला का विशेष सहयोग रहा। अवसर पर तुलसी की उपयोगिता व औषधीय प्रयोग की जानकारी हेतु पम्फलेट भी बाँटे गए।

ओ३म्
आर्य जगत्
सप्ताह रविवार, 14 अक्टूबर 2012 से 20 अक्टूबर 2012

अविवेकी जन डूब जाते हैं

● डॉ. रामनाथ वेदालंकार

भि वेना अनूषत, इयक्षन्ति प्रचेतसः।
मज्जन्त्यविचेतसः।।

ऋग् ९.६४.२१ ऋषिः

ऋषिः **काश्यपः।** देवता **पवमानः सोमः।** छन्दः **गायत्री।**

● (**वेनाः**) प्रभु–प्रेमी मेधावी जन, (**अभि अनूषत**) अभिमुख होकर (पवमान सोम प्रभु की) स्तुति करते हैं। (**प्रचेतसः**) प्रकृष्ट चित्तवाले विवेकी जन, (**इयक्षन्ति**) यज्ञ करने का संकल्प करते हैं। (**अविचेतसः**) अविवेकी जन, (**मज्जन्ति**) डूब जाते हैं।

● सोम प्रभु पवमान हैं, जग को पवित्र करने वाले हैं। जो मलिनता संसार में कई कारणों से उत्पन्न होती है उसे विविध साधनों से पवित्र करनेवाले सोम प्रभु यदि न होते तो मलिनता इतनी बढ़ जाती कि प्राणियों का जीवित रहना कठिन हो जाता। वे मानव के हृदय को भी पवित्र करनेवाले हैं, परन्तु उन्हीं के हृदय को पवित्र कर सकते हैं जो अपना हृदय पवित्र होने के लिए उन्हें देते हैं। प्रभु–प्रेमी मेधावी जन सोम प्रभु के अभिमुख हो उनके प्रति प्रणत होते हैं, उनकी स्तुति करते हैं, उनकी पावनता का गुणगान करते हैं, उन्हें आत्म–समर्पण करते हैं। परिणामतः वे 'प्रचेताः' बन जाते हैं, उनका चित्त प्रकृष्ट, पवित्र, ज्ञानमय और विवेकयुक्त हो जाता हैं। 'प्रचेताः' मनुष्य दीर्घद्रष्टा होते हैं। जिस यज्ञ को अन्य लोग निरर्थक समझते हैं, उन्हें वही प्यारा होता है। वह अपने जीवन में यज्ञ करने का संकल्प लेते हैं। वे सोम–यज्ञ करते हैं, सोम प्रभु के नाम से यज्ञ में आहुतियाँ डालते हैं, 'सोम' प्रभु का भजन–कीर्तन करते हैं और उससे प्रेरणा पाकर स्वयं भी साक्षात् 'सोम' बन जाते हैं। उनके जीवन में सोम–सदृश रसमयता, मधुरता और पावनता आ जाती है। 'सोम' के आदर्श को अपने सम्मुख रखते हुए वे अन्य यज्ञों का भी आयोजन करते हैं। 'सोम' प्रभु पावनता के यज्ञ को चला रहे हैं, वे भी समाज को पावन करते हैं। 'सोम' प्रभु सृष्टि–यज्ञ चला रहे हैं, वे भी सर्जनात्मक कार्यों को करते हैं। 'सोम' प्रभु पालन–पोषण और पूर्ति का यज्ञ कर रहे हैं, वे भी निर्बलों का पालन करते हैं, अपुष्टों को पुष्टि देते हैं, अपूर्णों के दोषों को दूर कर उनके छिद्र भरते हैं। यज्ञमयी नौका पर चढ़कर वे भव–सागर से पार हो जाते है। परन्तु जो 'अविचेताः' हैं, अविवेकी हैं, अल्पदर्शी हैं, वे न 'सोम' प्रभु का स्तवन करते हैं, न यज्ञ करते हैं। परिणामतः वे भव–सागर में डूब जाते हैं और दुर्गति पाते हैं।

❑

वेद मंजरी से

इस अंक में प्रकाशित सभी लेखों में व्यक्त भावों व विचारों के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं और इसमें किसी आपत्तिजनक बात के लिए 'सम्पादक' एवं 'आर्य जगत्' उत्तरदायी नहीं होगा।

उपनिषदों का संदेश

● महात्मा आनन्द स्वामी

पिछले अंक में स्वामी जी ने बताया कि एक मन का विचार दूसरे के मन के विचार पर प्रभाव डालता है। मन के द्वारा मनुष्य परब्रह्म को भी पा सकता है। इसलिए मन को संभालने की अत्यंत आवश्यकता है। यह बहुत बड़ी शक्ति है। उपनिषद् का प्रथम संदेश है कि इस मन में दृढ़ संकल्प पैदा करो। दूसरा संदेश है कि अन्य–अर्थात् सुख देने वाले वस्तुओं का प्रभूत संग्रह करो। लेकिन यह संग्रह केवल अपने लिए नहीं दूसरों के लिए संग्रह करो। त्यागपूर्वक भोग करो। भोग करने के साथ–साथ शरीर में शक्ति का संचार कैसे हो, इस बात का ध्यान रखना भी उतना ही ज़रूरी है। शरीर में शक्ति आती है शुद्ध आहार, गाढ़ निद्रा और ब्रह्मचर्य से।

त्याग का अर्थ स्वामीजी ने बताया–विभक्त करना, दान करना आँटना। इसके बिना सुख मिलना आसंभव है।

अब आगे.....

वेद भी कहता है–

मोघमन्नं विन्दते अप्रचेताः सत्यं ब्रवीमि वध इत्स तस्य

ऋ.10.117.6

'जो व्यक्ति अन्न का संग्रह करके अकेला खा जाता है उसके लिए वेद भगवान् कहता है कि वह विष खाता है।' वह आत्म–हत्या कर रहा है। **'सत्यं ब्रवीमि'** मैं सत्य कहता हूँ, इसमें सन्देह के लिए स्थान नहीं। और फिर मनु जी महाराज ने भी कहा है– **दानमेकं कलौ युगे।** कलियुग में स्वर्ग और मुक्ति पाने का सबसे बड़ा साधन है दान। कई लोग पूछते हैं कि आनन्द स्वामी! यह आसन, प्राणायाम, यम–नियम तो बहुत कठिन है। क्या ईश्वर को पाने का कोई सरल मार्ग नहीं? तो सुनो मेरे भाई! सरल मार्ग भी है।

दानमेकं कलौ युगे। दान करो! ऐ धनिको! अपना धन दूसरों को दो, जहाँ वह समाज के काम आये। इसकी स्थिर निधियाँ (Fixed Deposit) न बनाते जाओ। ये फ़िक्स डिपॉज़िट रहेंगे नहीं। कोई उन्हें रहने नहीं देगा। अपनी आवश्यकताओं को कम करो। बढ़ाओ नहीं। थोड़ी वस्तुओं में निर्वाह करने का स्वभाव बनाओ। योग की भाषा में इसको अपरिग्रह कहते हैं, अर्थात् संग्रह न करना। अंग्रेज़ी में जिसे Hoarding कहते हैं वह न करना। पाँच धोतियों और पाँच कुर्तों में यदि निर्वाह होता है तो पाँच ट्रंक साथ तो जाएँगे नहीं; अन्त में यही रह जायेंगे। तब इनके लिए अपने आप पर और मन पर बोझ क्यों डालते हो?

आई अज़ल[1] तो आप अकेले चले गये।

अन्त में तो सब–कुछ छोड़कर चले जाना है। पहले किसी को एक वस्तु भी देना नहीं चाहता। जब मृत्यु आती है तो एक भी वस्तु को साथ नहीं ले–जा सकता–

आई अजल तो आप अकेले चले गये।
घर में जमा था सब–कुछ मगर कुछ न ले गये।।

आज तक कोई ले नहीं गया। आपके मुहल्ले में या ब्लॉक में कोई ले गया हो तो मुझे बताओ। नहीं, आज तक कोई लेकर नहीं गया। कोई लेकर नहीं जा सकता। यह सब कुछ यहीं रह जाता है।

पाकिस्तान बनने से पूर्व एक दिन मैं मुलतान के आगे जा रहा था। डेरा इस्माईल खाँ पहुँचना था। दरिया से नौका में बैठकर नदी को पार करना था। गाड़ी जा रही थी बहुत तेज़। तभी बहुत जोर से धक्का लगा। कई लोग अपनी सीटों से नीचे आ गिरे। गाड़ी रुक गई। गाड़ी के रुकते ही कई लोग शोर मचाने लगे–टक्कर हो गई! मैं भी नीचे उतरा। इंजन की ओर चला यह देखने कि टक्कर किस वस्तु से हो गई? कुछ लोग मुझसे पूर्व ही इञ्जन के पास हो आए थे। उनसे मैंने पूछा, "क्या हुआ?" तो वे बोले, "रेल की लाइन पर पहाड़ आकर बैठ गया है।" मैंने आश्चर्य से कहा, "पहाड़ कैसे आकर बैठ गया है?" उन्होंने कहा, "स्वयं जाकर देखो! रेत का पहाड़ रेल की पटरी पर बैठा है।" और मैंने वहाँ जाकर देखा कि वस्तुतः रेत का एक ऊँचा टीला पटड़ी के ऊपर है। चकित होकर मैंने कहा, "यह टीला पटड़ी के ऊपर आ गया है या कि पटरी नीचे चली गई है?" वहाँ उस प्रदेश के कुछ लोग भी थे। उन्होंने कहा, "पटरी टीले के नीचे नहीं, टीला पटड़ी के ऊपर आ गया है। यह रेतीला प्रदेश है। तीव्र आँधी चलती है तो रेत के पहाड़ उड़ने लगते हैं। उड़ते–उड़ते कभी पटड़ी के ऊपर भी आ बैठते हैं।" मैंने पूछा, "क्या वर्षभर ये पर्वत इसी प्रकार उड़ते रहते हैं?" उन्होंने बताया, "नहीं,

जब वर्षा हो जाए तब नहीं उड़ते। तब रेत भी नहीं उड़ती।" उस समय मुझे शास्त्र की बात स्मरण आई कि यह धनरूपी पहाड़ उड़नेवाला है। एक स्थान पर बहुत समय नहीं रहता। दानरूपी वृष्टि इस पर हो जाए तो फिर नहीं उड़ता।

ओ धनिको! दान की वर्षा करो इस धन से। नहीं तो स्मरण रखो कि यह पर्वत उड़कर कहीं अन्यत्र चला जायेगा। यह उड़नेवाला पर्वत है।

और फिर मरने वाले का सबसे बड़ा मित्र भी दान ही है। दिया हुआ दान उसके साथ जाता है। दबाया हुआ तो कभी जाता नहीं। स्थिर निधि और भवन भी नहीं जाते। इसलिए वेद भगवान् ने कहा, "त्याग से भोग करो।"–**तेन त्येक्तेन भुञ्जीथा।**

'त्यक्त' शब्द का अर्थ घर–बार छोड़कर, लोक–कल्याण के लिए संन्यासी या वानप्रस्थी बन जाना भी है। इसलिए उपनिषद् कहता है कि धन अवश्य कमा, परन्तु त्याग के लिए कमा। बहुत अधिक संग्रह न कर, बहुत स्थिरनिधि न बना।

साईं इतना दीजिये, जा में कुटुम समाय।
मैं भी भुखा न रहूँ, साधु न भूखा जाय।।

इतने ही धन की मनुष्य को आवश्यकता होती है। जो इससे अधिक संग्रह करता है, वह बोझा ढोता है। अतः उपनिषद् न जहाँ यह कहा कि–**अन्नं बहु कुर्वीत**–बहुत अन्न संग्रह कर, बहुत धन एकत्रित कर, वहाँ यह भी कहा–**न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यः**–धन से मनुष्य की कभी तृप्ति नहीं होती।

नचिकेता गया महर्षि यम के पास। महर्षि ने कहा, "वर माँग।" नचिकेता ने कहा, "मैं आत्मा का ज्ञान चाहता हूँ।" यम ने उसे बहुत प्रलोभन दिये; कहा, "धन ले ले, राज्य ले ले, दीर्घायु ले ले, हीरे, मोती, जवाहर, भोग–विलास के सामान ले ले।" नचिकेता ने कहा, "नहीं यम महाराज! मुझे वह सब–कुछ नहीं चाहिए। धन–सम्पत्ति से मनुष्य की तृप्ति नहीं होती। मुझे तो आत्मा का ज्ञान चाहिए।"

दिल्ली के किसी युवक से यम महाराज ऐसी बात कहते तो वह कहता, ठीक कहते हो यम महाराज! आत्मा और परमात्मा का ज्ञान लेकर मुझे करना क्या है! मुझे दिल्ली में चार–पाँच कोठियाँ दे दो। छः सात करोड़ रुपये की स्थिर निधि दे दो। मेरे लिए यही पर्याप्त है। यदि यह नहीं दे सकते तो बहुत–सी नेकटाइयाँ और कुछ पतलूनें दे दो।"

और यदि नई दिल्ली की देवियाँ पहुँच जातीं यम के पास तो कहती, 'हमें नाइलोन के कुछ दुपट्टे ही दे दो।'

परन्तु नचिकेता जानता था इन सबकी वास्तविकता। उसे पता था कि धन से किसी की तृप्ति नहीं होती। देखो, यदि धन से तृष्ति हो जाती तो ये अमेरिकावाले क्या तृप्त न हो जाते? ये चीन वाले क्या संतोष करके न बैठते? फिर क्या ये हमारे पर्वतों की चोटियों पर अधिकार करने का प्रयत्न करते? नहीं मेरे भाई! धन से किसी की तृप्ति नहीं होती। इसलिए नचिकेता ने कहा–**न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यः।**

परन्तु उपनिषद् केवल यही तो नहीं कहता कि बहुत–सा धन उपार्जन कर और त्याग के लिए कर; केवल यहीं कहता कि धन से किसी की तृप्ति नहीं होती। अपितु यह भी कहता है–**मा गृधः कस्य स्विद्धनम्**–धन का लोभ न कर! किसी दूसरे का धन छीनने का प्रयत्न न कर!

इन सब बातों का तात्पर्य क्या है? यह कि धन प्राप्त करो, शुभ कार्यों में खर्च करो और इस बात को मत भूलो कि धन से किसी की तृप्ति नहीं होती। धन आवश्यक है। संसार का कार्य इसके बिना चलता नहीं। इसलिए इसे कमा अवश्य, संग्रह भी कर परन्तु त्याग के लिए एकत्रित कर।

और यह धन जितना आवश्यक है, इसके सम्बन्ध में आपको एक निजी घटना सुनाता हूँ। मैं जब संन्यासी बना तो संकल्प किया कि अपनी जेब में एक पैसा भी नहीं रखूँगा। तब एक नगर में गया। उसका नाम नहीं लेता। रात्रि के ग्यारह बजे तक वहाँ भाषण देता रहा। प्रातःकाल मुझे दूसरे स्थान पर जाना था, अतः भाषण के पश्चात् मैंने मन्त्री जी से कहा, "मन्त्री जी! मुझे प्रातःकाल चार बजे की बस से जाना है।" वे बोले, "हाँ स्वामी जी! मुझे स्मरण है! मैं स्वयं प्रातः आपको बस पर बिठा आऊँगा।" मैंने कहा, "आपकी निद्रा खुल जायेगी?" वे बोले, "वाह! भला निद्रा कैसे नहीं खुलेगी?" मैं प्रातः उठा, बिस्तर बाँधा। बैठ गया। मन्त्री जी नहीं आए। रात्रि में देर से सोए थे, प्रातः नींद नहीं खुली। अंत में मैंने समाज के सेवक से कहा, "भाई! मेरा बिस्तर उठाकर बस के अड्डे पर ले–चल, मुझे अड्डे का पता नहीं।" वह बिस्तर लेकर चला। मैं अड्डे पर पहुँच गया। पहले समाज–मन्दिर में बैठा था, अब अड्डे पर बैठ गया। टिकट लेने के लिए मेरे पास पैसे नहीं थे। बस आई, चली गई। मैं बैठा रहा। तब तक कुछ प्रकाश हो गया। इसी प्रकाश में डी.ए.वी. स्कूल के हेड मास्टर महोदय ने मुझे वहाँ देखा। मेरे पास आकर बोले, "स्वामीजी! आप यहाँ पर बैठे हैं, क्या बस पर जाएँगे? मैंने कहा, "जाना तो है।" उन्होंने कहा, "फिर टिकट ले आऊँ?" मैंने लम्बी साँस खींचकर कहा, "ले आओ अवश्य।" तब तीसरी बस पर मैं चढ़ा और तभी से मैंने निर्णय किया कि जेब में कुछ पैसे होने चाहिएँ अवश्य। धन के बिना साधु का कार्य भी नहीं चलता।

और जब मैं गंगोत्री गया तो देखा कि इस धन की बड़े–बड़े योगियों को, महात्माओं और सन्तों को भी आवश्यकता रहती है। वे भी देखते रहते हैं कि कब कोई अहमदाबाद अथवा मुम्बई का सेठ आये आये और रुपया दे जाये। इच्छानुसार रुपया न मिले तो रूठ भी जाते हैं। गंगोत्री में एक बहुत बड़े महात्मा थे, बहुत सज्जन साधु। आज उनका देहान्त हो गया। 32 वर्ष वे मौनी बनकर रहे, एक शब्द भी बोले नहीं। यह उनका तप था। गंगोत्री में भी साढ़े दस हज़ार फ़ीट की ऊँचाई पर बिल्कुल नग्न रहते थे। चारों और बर्फ और एक भी कपड़ा वे नहीं पहनते थे; कम्बल भी नहीं लेते थे। एक बार एक सेठ जी वहाँ आये। उन्होंने अपने सेवको से कहा– "जितने भी साधु गंगोत्री में हैं, सबको एक–एक सौ रुपये दे दो।" उस मौनी ने यह बात सुनी तो रूठ गये। उन्होंने सौ रुपये लेना अस्वीकृत कर दिया। मैंने उनसे पूछा तो उन्होंने संकेत में बताया कि यह क्या सेठ है! जो कल के छोकरे साधु हैं उन्हें भी सौ रुपये देता है और मैं जो 32 वर्ष से मौन धारण किये हुए हूँ, मुझे भी सौ रुपये! मैं नहीं लूँगा इसका दान।" सेठ ने मुझे बुलाया और कहा, "महात्मा को प्रसन्न कैसे करें?" मैंने कहा, "एक ही उपाय है। जो दूसरों को दिया है इन्हें उससे दुगुना दो।" सेठ जी ने मौनी बाबा को दो सौ रुपये दिये तो वे प्रसन्न हो गये।

नहीं भाई! इस माया के बिना साधु का कार्य भी बनता नहीं। कुछ वर्ष पूर्व बम्बई में एक साधु–सम्मेलन हुआ। मुम्बई में एक सेठ जी उस सम्मेलन का प्रबन्ध कर रहे थे। मुझे भी उन्होंने बुलाया। मैं उस समय तो जा नहीं सका, परन्तु बाद में बम्बई चला गया तो ज्ञात हुआ कि सेठ जी रुग्ण हैं। उन्हें देखने गया तो साधु–सम्मेलन की बात भी पूछी। उन्होंने बताया कि सम्मेलन बहुत सफल हुआ। लगभग पचास साधु उसमें सम्मिलित हुए। कई दिन तक उपदेश होते रहे। जो भी साधु उठता वह माया की निन्दा करता। यही कहता कि यह माया ठगनी है। इसके जाल में मत फँसो।

मैंने कहा, "सेठ जी! साधु लोग ऐसे ही उपदेश तो देते हैं। इसके अतिरिक्त वे क्या कहते?"

सेठ जी बोले, "सुनो तो सही! सम्मेलन समाप्त हुआ। साधुओं के जाने का दिन आया तो जिस साधु को हमने कम पैसे दिये उसका मुँह सूज गया। धन का नया इंजेक्शन करने पर ही वह सूजन ठीक हुई। धन की गठड़ियाँ भर–भरकर वे लोग ले गये।"

अब मैं हूँ साधु। मुझे साधुओं का पक्ष लेना था। मैंने कहा, सेठ जी! ये धन और माया तो हतभाग्य हैं न। जो आपको इससे मुक्ति दिलाने का प्रयत्न कर रहे थे। आपके ऊपर कृपा कर रहे थे।" तो साधु भी धन के बिना नहीं रहता। संसार का कोई कार्य धन के बिना नहीं होता।

मैं उत्तर काशी में 'तत्वज्ञान' नाम की एक पुस्तक लिख रहा था। एक सज्जन को मैंने लिखा कि "मैं 'तत्त्वज्ञान' लिख रहा हूँ।" उन्होंने उत्तर में एक पत्र भेजा। उन्होंने लिखा कि पता नहीं तुम कौन–से तत्त्व की बात लिख रहे हो। संसार में आजकल एक ही तत्व रहा गया है और वह है 'धन तत्त्व'। यदि तुम उसके सम्बन्ध में लिख रहे हो तो व्यर्थ है। इसके साथ ही उन्होंने एक श्लोक भी लिखकर भेजा। वह आपको सुनाता हूँ–

यस्यास्ति वितं स नरः कुलीनः,
स पण्डितः सः श्रुतवान् गुणज्ञः।
स एव वक्ता स च दर्शनीयः,
सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ति।

अर्थात् "जिसके पास धन है वही इस संसार में उत्तम कुलवाला है, वही पण्डित है, वही विद्वान् है, वही गुणों को जानने वाला है, वह उत्तम भाषण देने वाला है, वही देखने योग्य है। संसार के सभी गुण सोने में अर्थात् धन में छिपे रहते हैं।" आजकल तो ऐसी ही बात है।

परन्तु उपनिषद् कहता है, कि, "यह ठीक नहीं। धन उपार्जन करो अवश्य, परन्तु उसमें फँस न जाओ। कमाओ परन्तु अकेले न खाओ। त्याग से भोग करो।" यह उपनिषद् का दूसरा संदेश है। और तीसरा सन्देश है–

नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो
नासमाहितः।
नाशान्तमानसो वापि
प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात्।।
–कठो0 2।24।।

"चाहे तुम कितना धन कमा ले, कितने ही विद्वान् बन जाओ, चाहे कितनी ही भाषाएँ सीख लो, कितनी ही डिग्रियाँ प्राप्त कर लो, कितने ही शास्त्र पढ़ लो, वेदपाठी भी जाओ, परन्तु यदि तुम्हारा चरित्र उत्तम नहीं तो सुनो! सुनो रे संसार के लोगो! तुम्हारा मूल्य दो कौड़ी भी नहीं।"

और आजकल यह चरित्र ही सबसे तुच्छ वस्तु बन गई है। स्कूल में अध्यापक महोदय ने हमें एक कविता लिखाई थी–

When wealth is lost nothing is lost
When health is lost something is lost.
When character is lost everything is lost.

अर्थात, धन चला गया तो समझो कोई हानि नहीं हुई; स्वास्थ्य गया तो समझो कुछ हानि हुई; यदि चरित्र चला गया तो समझो सब–कुछ समाप्त हो गया है।"

अब यह कविता उल्टे ढंग से पढ़ाई जाती है–

शेष पृष्ठ 11 पर ☞

हमारे ईश्वर का दिखाई न देना और उसकी अनुभूति न होना सबसे बड़ा आश्चर्य है

● मनमोहन कुमार आर्य

महाभारत में यक्ष ने युधिष्ठिर से प्रश्न पूछा था कि संसार का सबसे बड़ा आश्चर्य क्या है? उन्होंने अपने उत्तर में कहा था कि मनुष्य प्रतिदिन लोगों को मरते हुए देखता है परन्तु वह यह नहीं सोचता कि एक दिन उसे मरना है, यह सबसे बड़ा आश्चर्य है। यक्ष ने इस उत्तर को ठीक मानकर उन्हें वरदान मांगने के लिए कहा और जो उन्होंने मांगा उसे पूरा किया। निश्चित रूप से यह एक बहुत बड़ा आश्चर्य है। **इसके अतिरिक्त हम जानते हैं कि यह संसार स्वयं नहीं बना, अपने आप बन भी नहीं सकता। जिसने इसे बनाया है उसे ईश्वर कहते हैं। मनुष्य को भी ईश्वर ने बनाया है। जब ईश्वर का अस्तित्व सिद्ध है और संसार व मनुष्य आदि सभी प्राणियों को उसने बनाया है, अन्य कोई सत्ता नहीं है जो यह कार्य कर सकती है, तो फिर ईश्वर का दर्शन व उसकी अनुभूति न होना, हमें लगता है कि संसार का एक अन्य सबसे बड़ा आश्चर्य है।**

आईये ईश्वर दिखाई क्यों नहीं देता और उसकी अनुभूति क्यों नहीं होती, इन प्रश्नों पर विचार करते हैं। ईश्वर किसी को भी दिखाई नहीं देता? इसका क्या कारण हो सकता है? **हम आंखों से साकार वस्तुएं देखते हैं। साकार वस्तुएं परिमित होती हैं।** ईश्वर द्वारा रचित यह ब्रह्माण्ड अपरिमित है, अनन्त है, इसका न कोई ओर है और न छोर। **अतः अपरिमित होने के कारण ईश्वर साकार न होकर निराकार है।** अब दूसरे प्रश्न, ईश्वर की अनुभूति न होने के कारणों पर विचार करते हैं। प्रत्येक विद्वान् एवं अविद्वान् मनुष्य के पास पांच ज्ञानेन्द्रियाँ–आंख, जिह्वा, नाक, त्वचा और कान हैं। इन्हीं इन्द्रियों से जीवात्मा अर्थात् मनुष्य को ज्ञान होता है और उस ज्ञान से अनुभूति होती है। यदि ईश्वर की अनुभूति इन ज्ञान इन्द्रियों से नहीं हो रही है तो स्वाभाविक रूप से वह रूप, रस, गन्ध, स्पर्श व शब्द, इन्द्रियों के विषयों से, पृथक् है। **अब मनुष्य के पास मन, बुद्धि व आत्मा बचते हैं।** देखना है कि क्या यह ईश्वर का अनुभव करते व करा सकते हैं। मन का कार्य मनन करना है। इसीलिए हम मनुष्य कहलाते हैं। **जब हम इस संसार को देखते हैं तो स्वाभाविक रुप से मन, अपने आप से, प्रश्न करता है, इसका रचियता कौन है? यह संसार उसने क्यों व किसके लिए बनाया है?** यह सनातन व शाश्वत प्रश्न हैं जो सृष्टि के प्रारंभ से हमारे आदि पूर्वजों, ऋषिओं–मुनियों, विचारकों व चिन्तकों को आन्दोलित करते रहे हैं। **इससे पूर्व की वह स्वयं इनका उतर ढूंढते उनके हाथ में वेद का ज्ञान आ गया। संसार की सभी जिज्ञासाओं का समाधान करने में वेद सक्षम हैं। महर्षि दयानन्द ने अपने अन्तर्चक्षुओं से यह जाना था कि वेद ईश्वरीय ज्ञान है और इसमें संसार की सभी सत्य विद्यायें विद्यमान हैं।** ईश्वरीय ज्ञान होने की एक कसौटी होती है कि वह सृष्टि बनने के साथ आरम्भ के मनुष्यों को प्राप्त हो। वेद इस कसौटी पर खरे उतरते हैं जबकि अन्य कोई पुस्तक या ज्ञान यह दावा न करते हैं न कर सकते हैं। दूसरी कसौटी यह भी है कि ईश्वरीय ज्ञान में कोई भी बात असत्य, अप्रमाणिक, तर्कहीन व सृष्टिक्रम व सृष्टि नियमों के विपरीत न हो। तीसरी कसौटी है कि वेद की भाषा किसी देश व स्थान विशेष की भाषा न होकर ऐसी हो जिसके लिए सभी मनुष्यों को समान रूप से परिश्रम करना पड़े। अन्य कसौटी यह भी होनी चाहिए कि ईश्वर प्रदत्त भाषा के शब्द व उनके अर्थ में सरलता, गम्भीरता व वैज्ञानिकता होनी चाहिये जिसमें ज्ञान, विज्ञान, कला एवं परस्पर व्यवहार आदि सरलता से किए जा सकें। वेद में यह सब कसौटियां विद्यमान हैं। वेदों की अन्तःसाक्षी भी वेद को ईश्वरीय भाषा एवं ज्ञान सिद्ध करती है। अब वेद सृष्टि के रचयिता का परिचय किस प्रकार से देते हैं, इससे सम्बन्धित एक वेद मंत्र व उसका हिंदी अर्थ प्रस्तुत करते हैं:

अहमिन्द्रो न परा जिग्य इद्धनं न मृत्यवेवतस्थे कदाचन।

सोममिन्मा सुन्वन्तो याचता वसु न मे पूरवः सख्ये रिषाथन।

(ऋग्वेद मण्डल 10, सूक्त 48, मंत्र 5)

उपर्युक्त मन्त्र का महर्षि दयानन्द कृत अर्थ व भावः 'मैं (ईश्वर) परम ऐश्वर्यवान् (हूं) एवं सूर्य के सदृश सब जगत् का प्रकाशक हूं। मैं न कभी पराजय को और न ही मृत्यु को प्राप्त होता हूं। **मैं ही जगत्** रूप धन **अर्थात् सृष्टि का निर्माता हूं। सब जगत् की उत्पत्ति करने वाले मुझ ही को जानो।** हे जीवो! ऐश्वर्य प्राप्ति के यत्न करते हुए तुम लोग विज्ञानादि धन को मुझ से मांगो और तुम लोग मेरी मित्रता से अलग मत होओ।' हम पाठकों से निवेदन करते हैं कि वह विचार करें कि संसार की उत्पत्ति के आरम्भ में ही सबसे कठिन व जटिल प्रश्न का उत्तर वेद ने हमें दे दिया जिसे आज तक विज्ञान हल नहीं कर सका। अन्तिम उत्तर भी यही होना है, यह निश्चित है। वेद को पढ़ने से उसकी अन्तःसाक्षी से यह ज्ञान स्पष्ट हो ज़ाता है कि ईश्वर ही वेद मंत्रों के कर्ता, रचियता हैं और उन्होंने ही जीवात्माओं के कल्याण के लिए यह ज्ञान सृष्टि के आरम्भ में दिया था। वैदिक भाषा शास्त्री यह भी बताते हैं कि वेद भाषा के अपभ्रंषों एवं विकारों से ही संसार की अन्य समस्त भाषायें अस्तित्व में आई हैं। विदेशी विद्वानों का यह दुराग्रह ही प्रतीत होता है कि वह भारत एवं वेदों के अनुयायी आर्यों को यह श्रेय देना नहीं चाहते और इनका उत्तर तरह–तरह की थ्योरियों व उपायों से करते हैं जो कि असत्य होने के कारण वर्तमान समय तक न तो सर्वमान्य हो सके हैं और न कभी होंगे।

अब यह उत्तर मिलना शेष है कि ईश्वर ने यह संसार क्यों व किसके लिए बनाया है? यह प्रसन्नता की बात है कि इस प्रश्न का भी बहुत ही सन्तोषजनक एवं स्वीकार्य उत्तर वेद एवं वैदिक साहित्य में विद्यमान है। संसार क्यों बनाया का उत्तर है कि **ईश्वर संसार बना सकता है, बनाना जानता है, पहले भी असंख्य बार बना चुका है, उसमें संसार बनाने का पूरा सामर्थ्य है, तो क्यों न बनाता?** यदि न बनाता तो यह आरोप लगता कि ईश्वर निकम्मा है, वह संसार नहीं बना सकता। अतः संसार बनाना ईश्वर के सर्वशक्तिमान होने का प्रमाण है और संसार बना कर व उसे नियमों के अन्तर्गत चलाकर उसने स्वयं की सर्वश्रेष्ठता सिद्ध कर दी है। **यह संसार ईश्वर ने अपनी सनातन प्रजा–'जीवों' के 'भोग व अपवर्ग' के लिए बनाया है।** भोग कहते हैं अपने पूर्व संचित कर्मो के फलों को भोगना जो कि सुख व दुःख रूप होते हैं। अच्छे कर्मों यथा–सही विधि से ईश्वरोपासना, वेद की शिक्षाओं के अनुसार जीवनयापन करना, यज्ञ, दान, सेवा, देश भक्ति के कार्य आदि हैं जिनका फल सुख के रुप में मिलता है। तथा वेदों के विरुद्ध कार्य करना, असत्य भाषण, ईश्वरोपासना व यज्ञ आदि न करना, देश समाज व अन्य प्राणियों को हानि व दुःख पहुंचाना आदि कार्य बुरे कर्म हैं जिनका परिणाम व फल दुःख के रुप में मिलता है। अगले जन्म में हमारी जाति यथा, मनुष्य, पशु, कीट–पतंग आदि, आयु तथा भोग इस जन्म के कर्मों के आधार पर निर्धारित होंगे। यह बात व सिद्धान्त योग दर्शन के प्रणेता महर्षि पतंजलि का है जिन्होंने अपनी साधना, ज्ञान व योग बल से प्रकृति के रहस्यों को जाना था और वेद–सम्मत है। अतः भावी जन्मों में कल्याण के लिए तो हमें वेद की आज्ञाओं का पालन, **जो और कुछ नहीं अपितु केवल सद्कर्म ही हैं,** करना होगा। **अपवर्ग दुःखों की पूर्ण निवृत्ति को कहते हैं। इस अवस्था का नाम 'मोक्ष' भी है। जो हमारे सत्कर्मों से हमें मिलता है और इस अवस्था को प्राप्त करने वाले मनुष्यों को बहुत लम्बी अवधि तक जन्म–मरण से अवकाश मिल जाता है और उस अवधि में जीवात्मा ईश्वर के सान्निध्य में पूर्ण आनन्द को भोगता है।** यह सब विचार व मान्यतायें बुद्धि की कसौटी पर कसी हुई हैं और आत्मा की भी स्वीकृति इसमें है।

अब ईश्वर के दिखाई न देने का कारण हमारी समझ में आ गया है। एक तो वह अपरिमित होने के कारण आकार से रहित अर्थात् निराकार है। दूसरा कारण है हमारा मन जिसमें काम, क्रोध, लोभ, मोह, इच्छायें, राग, द्वेष आदि दुर्गण एवं अज्ञानता भरी पड़ी है। **जिस प्रकार दूषित दर्पण में अपना चेहरा दिखाई नहीं देता, उसी प्रकार मन में पड़े इन अज्ञानता आदि के आवरणों के कारण भी ईश्वर दिखाई नहीं देता और न उसकी अनुभूति ही हो पाती है।** यदि ईश्वर को देखना है तो दुर्गुणों को दूर कर भद्र की प्राप्ति करनी होगी। अज्ञानता को दूर कर सभी दुर्गणों के आवरणों को दूर करना होगा। **मन मे स्वच्छता व शुद्धता आ जाने पर ईश्वर दिखाई भी देगा और उसकी अनुभूति भी होगी और जीवात्मा पूर्ण आनन्द की स्थिति को प्राप्त होगा।**

196/261 चुक्खूवाला ब्लॉक–2
देहरादून–248001

न्यूटन का तीसरा नियम

● अजय शर्मा

सन् 2012 का वह दिन हम भारतीयों के लिए बड़े गर्व का दिन था जब भारत की बेटी सुनीता विलियम्स ने दूसरी बार अंतरिक्ष में जाने के लिए उड़ान भरी। सीना इस बात से और चौड़ा हो गया कि इस बार वह अंतरिक्ष स्टेशन की सदस्य मात्र नहीं रहेंगी बल्कि उस टीम का नेतृत्व भी करेंगी। जब हम सब परिवार के सदस्य दूरदर्शन पर यह समाचार देख रहे थे, तो मेरी बिटिया बोल पड़ी मैं भी हवाई जहाज़ में बैठकर अंतरिक्ष में जाऊंगी। उसकी मम्मी ने कहा ज़रुर जाना बेटा! पर वहां हवाई जहाज़ से नहीं रॉकेट से जाते हैं। बिटिया ने जानना चाहा कि वहां हवाई जहाज से क्यों नहीं जाते? मां समझाने लगी हवाई जहाज़ हवा के दबाव से उठता है और अंतरिक्ष में हवा नहीं होती इसलिए वहां जाने के लिए हवाई जहाज़ उपयोगी नहीं है। दूसरी बात अंतरिक्ष में जाने के लिए पृथ्वी के आकर्षण पर विजय पानी होती है और यह कार्य रॉकेट ही कर सकता है क्योंकि वह क्रिया प्रतिक्रिया के सिद्धांत पर काम करता है।

उनकी बातें सुनकर मैं सोचने लगा वाकई न्यूटन ने अपनी खोज से इस समाज की बड़ी सेवा की है। भौतिक शास्त्र के कई मूलभूत सिद्धांत न्यूटन की ही खोज हैं। वस्तुओं की गति के संबंध में न्यूटन के तीन नियम प्रसिद्ध हैं। पहला है जड़त्व का नियम, दूसरा है संवेग परिवर्तन की दर के पदों में बल की माप और तीसरा है क्रिया प्रतिक्रिया का नियम। न्यूटन के तीसरे नियम के अनुसार इस संसार में प्रत्येक क्रिया की प्रतिक्रिया होती है जो परिमाण में क्रिया के बराबर तथा दिशा में क्रिया के विपरीत होती है।

यही क्रिया प्रतिक्रिया का नियम है जो रॉकेट को उपर अंतरिक्ष में ले जाता है। जब रॉकेट के ईंधन कक्ष में आग लगाई जाती है। तो ईंधन के दहन से बनने वाली गैसों पर दाब लगता है यह क्रिया कहलाती है। इस क्रिया का प्रभाव होता है कि गैस तेजी से नीचे की ओर गति करती है। रॉकेट से निकलती गैस रॉकेट पर बराबर परिमाण में तथा विपरीत दिशा में बल लगाती है यह विपरीत दिशा में लगाया गया बल प्रतिक्रिया कहलाती है। इसी प्रतिक्रिया के प्रभाव में रॉकेट ऊपर की ओर उठता है।

न्यूटन का क्रिया प्रतिक्रिया का यह नियम सार्वात्रिक तथा महत्वपूर्ण नियम है। इस नियम की खूबसूरती यह है हर स्थिति में प्रभावी रहता है। इस बात का कोई फर्क नहीं पड़ता कि पिंड सजीव है कि निर्जीव। यह नियम सजीव तथा निर्जीव दोनों तरह की चीजों पर समान रूप से क्रियाशील होता है।

यही वह नियम है जिसके फलस्वरूप हममें गति होती है। जब हम चलते हैं तो धरती को पीछे की ओर धकेलते हैं, यह है हमारे द्वारा पृथ्वी पर लगाई गई क्रिया। पृथ्वी भी हम पर बराबर परिमाण में तथा विपरीत दिशा में प्रतिक्रिया लगाती है। इसी प्रतिक्रिया के प्रभाव में हम आगे की ओर बढ़ते हैं।

क्या आपने कभी गौर किया है जब हम किसी वस्तु को उठाने का प्रयास करते हैं तो बल किधर लगाते हैं ऊपर की ओर या नीचे की ओर? वस्तु को उठाते वक्त हम वस्तु पर ऊपर की ओर बल लगाते हैं या धरती पर नीचे की ओर बल लगाते हैं? जी हां। वस्तु को उठाते समय हम धरती को नीचे की ओर दबाते हैं यह होती है क्रिया ! धरती इस क्रिया के बराबर और विपरीत दिशा में हम पर प्रतिक्रिया लगाती है जो हमारे हाथों से होते हुए उठाई जा रही वस्तु पर लगती है। इस प्रतिक्रिया का प्रभाव होता है कि वस्तु ऊपर उठती है।

अगर कभी चलते चलते ठोकर लग जाए तो हमें ठोकर की जगह पर दर्द का अनुभव होता है। इसी प्रकार जब हम खाली हाथों से पत्थर पर या दीवार पर प्रहार करते हैं तो हमें चोट लगती है। प्रहार तो हम दीवार पर करते हैं किन्तु चोट हमें ही लगती है। ऐसा क्यों हुआ? इसका कारण है प्रतिक्रिया। जब हम दीवार पर प्रहार करते हैं तो यह होती है क्रिया। न्यूटन के तृतीय नियमानुसार दीवार भी हम पर प्रतिक्रिया लगाती है जो कि परिमाण में क्रिया के बराबर तथा दिशा में क्रिया के विपरीत होती है। इसी प्रतिक्रिया के कारण हमें चोट लगती है दर्द का अनुभव होता है।

उक्त सभी उदाहरणों में क्रिया व प्रतिक्रिया प्रत्यक्ष बल के रुप में तुरंत उपरांत प्रभावशील नज़र आते हैं। यह क्रिया प्रतिक्रिया का नियम सार्वत्रिक नियम है, हर परिस्थिति में लागू होता है। अगर हम अपने जीवन में देखें तो यह क्रिया प्रतिक्रिया का नियम विभिन्न रुपों में परिलक्षित होता है। हमारे संपूर्ण जीवन में प्रतिपल यह नियम प्रभावशील रहता है।

जीवित रहने व ऊर्जा प्राप्ति के लिए हम भोजन करते हैं। यदि हम ताज़ा, शुद्ध, विटामिनयुक्त संपूर्ण आहार लें व शुद्ध जल का सेवन करें तो स्वस्थ बने रहेंगे और यदि हम सड़ा गला, विटामिनहीन दूषित भोजन लें व संक्रमित जल का सेवन करें तो रोगग्रस्त हो जाते हैं। तरह–तरह की बीमारियाँ हमें घेर लेती हैं। हमारा भोजन ग्रहण करना क्रिया है तथा स्वस्थ रहना या रोगग्रस्त होना उसकी प्रतिक्रिया है। जिस प्रकार का भोजन ग्रहण किया जाता है स्वास्थ्य पर उसका प्रभाव भी उसी प्रकार का होता है। जैसी क्रिया होती है वैसी ही प्रतिक्रिया भी होती है। कहा भी गया है ''जैसा खाए अन्न वैसा बने मन'' भोजन का प्रभाव हमारे मन पर पड़ता है और मन हमारे विचारों तथा व्यवहार को प्रभावित करते हुए हमारे व्यक्तित्व का निर्धारण करता है।

यह क्रिया प्रतिक्रिया का नियम ही है जिसकी वजह से हम जीवित हैं। प्रत्येक सजीव किसी न किसी रूप में श्वसन करता ही है। श्वसन की क्रिया में हम आक्सीजन युक्त गैस को भीतर ग्रहण करते हैं। श्वास का भीतर ग्रहण करना क्रिया है तत्पश्चात् कार्बनडाइऑक्साईड युक्त गैस को शरीर से बाहर छोड़ते हैं। श्वास का बाहर छोड़ा जाना प्रतिक्रिया है। श्वास को भीतर लेना क्रिया है और श्वास को बाहर छोड़ना उसकी प्रतिक्रिया है। सजीवों को जीवित रहने के लिए जितनी आवश्यक श्वास (क्रिया) है उतनी ही आवश्यक प्रश्वास (प्रतिक्रिया) है? क्या किसी ऐसे सजीव की कल्पना की जा सकती है जो केवल श्वास ग्रहण करता है श्वास छोड़ता न हो या फिर ऐसा सजीव जो श्वास ग्रहण न करता हो केवल श्वास छोड़ता हो।

क्रिया प्रतिक्रिया नियम का प्रभाव हमारे जीवन में यहीं तक सीमित नहीं है इसका विस्तार आगे भी दिखाई पड़ता है। हमारे मस्तिष्क में उत्पन्न होने वाला विचार क्रिया है और जीवन में हमारा व्यवहार उस क्रिया की प्रतिक्रिया है। यदि हमारे मन में शुभ विचार उत्पन्न होते हैं धनात्मक विचार आते हैं तो हमारा व्यवहार भी शुभ होता है, हमारे व्यवहार में करुणा और प्रेम के दर्शन होते हैं। इसके विपरीत यदि हमारे मन में अशुभ विचार उत्पन्न होते हैं, ऋणात्मक विचार उत्पन्न हों तो हमारे व्यवहार में द्वेष हिंसा और छल कपट के दर्शन होते हैं। जैसी क्रिया होती है वैसी ही प्रतिक्रिया भी होती है। शुभ क्रिया की शुभ प्रतिक्रिया व अशुभ क्रिया की अशुभ प्रतिक्रिया होती है।

अपनी इस जीवन यात्रा में हम समाज को जो देते हैं वह है क्रिया और समाज से जो हमें प्राप्त होता है वह होती है क्रिया की प्रतिक्रिया। जैसी क्रिया होती है वैसी ही उसकी प्रतिक्रिया भी होती है। यदि हम समाज में सबका सहयोग करें, सबसे प्रेमपूर्वक व्यवहार करें, दूसरों के दुःख व तकलीफों को अनुभव करते हुए उसे बांटने का प्रयास करें तो हमारी इस क्रिया की प्रतिक्रिया में समाज से हमें सहयोग, प्रेम व खुशी की प्राप्ति होगी। यदि हम समाज में लोगों से असहयोग करें, द्वेषपूर्ण व्यवहार करें, लोगों को कष्ट पहुंचाने वाले कार्य करें, स्वार्थ सिद्धी में लगे रहें तो समाज से हमें वही सब वैसा का वैसा वापस प्राप्त होता है। जैसी हमारी क्रिया होती है वैसी ही प्रतिक्रिया हमें समाज से प्राप्त होती है।

हमारे पूर्वजों ने कहा है ''जैसा करोगे वैसा भरोगे'' जैसा बीज बोओगे वैसी फसल काटोगे। यहां बीज का बोना क्रिया है तथा फसल का काटा जाना प्रतिक्रिया है। जैसी क्रिया होती है वैसी ही प्रतिक्रिया प्राप्त होती है। गीता में श्री कृष्ण जी ने कहा है ''जैसा कर्म करोगे वैसा फल देगा भगवान'' हमारे कर्म अगर क्रिया हैं तो उसके फल प्रतिक्रिया। क्रिया की अनुपस्थिति में प्रतिक्रिया। परिलक्षित नहीं होती। पहले क्रिया आती है इसके पश्चात् प्रतिक्रिया आती है। हमारे कर्म ही क्रिया हैं इस क्रिया पर ही हमारा नियंत्रण होता है। हम जैसे चाहें वैसे कर्म कर सकते हैं। शुभ कर्म कर सकते हैं अशुभ कर्म भी कर सकते हैं। यह कर्म (क्रिया) ही हमारे वश में है, जैसे हमारे कर्म होंगे वैसा ही फल (प्रतिक्रिया) हमें प्राप्त होगी। कहा भी गया है मनुष्य कर्म करने में स्वतंत्र है उसके कर्मों का फल ईश्वर द्वारा प्रदान किया जाता है। कर्मों का फल ईश्वर द्वारा प्रदान किया जाता है अच्छे कर्मों का फल अच्छा व बुरे कर्मों का फल बुरा ही प्राप्त होता है। न्यूटन का तीसरा नियम भी यही कहता है। प्रत्येक क्रिया की प्रतिक्रिया अवश्य होती है जो परिमाण में क्रिया के बराबर तथा दिशा में क्रिया के विपरीत होती है।

न्यूटन का यह तीसरा नियम न केवल विज्ञान का बल्कि इस जीवन कला का भी महत्वपूर्ण नियम है। जिस किसी मनुष्य ने क्रिया प्रतिक्रिया के इस नियम को जान लिया समझो उसने जीवन विद्या का सबसे महत्वपूर्ण सबक सीख लिया।

डी.ए.वी पब्लिक स्कूल
एस. ई.सी.एल. हाल
जिला रायगढ़ (छ.ग.)
पिन–496665

स्वामी सोम्यानन्द जी के आत्मा–परमात्मा विषयक सिद्धान्त विरुद्ध विचारों की समालोचना

● भावेश मेरजा

आर्य जगत् के 23–29 सितम्बर 2012 के अंक में स्वामी सोम्यानन्द सरस्वती जी का एक लेख प्रकाशित हुआ, जिसमें महर्षि दयानन्द जी द्वारा प्रतिपादित वैदिक दार्शनिक सिद्धान्तों के विरुद्ध कई भ्रामक व अस्पष्ट बातें लिखी गईं हैं। जैसे कि –

श्री सोम्यानन्द जी ने अपने लेख के शीर्षक में ही मिथ्या कथन करते हुए लिखा हैं – ''वेदानुसार आत्मा और परमात्मा में अंश और अंशी का सम्बन्ध है।'' जबकि वास्तविकता यह है कि वेदानुसार आत्मा (जिसको जीव अथवा जीवात्मा भी कहा जाता है) और परमात्मा में व्याप्य–व्यापक, उपास्य–उपासक, पिता–पुत्र, स्वामी–सेवक आदि का सम्बन्ध है– अंश और अंशी का सम्बन्ध कभी नहीं हो सकता है। महर्षि दयानन्द जी के ग्रन्थों में कहीं पर भी नहीं लिखा गया है कि आत्मा और परमात्मा में अंश और अंशी का सम्बन्ध है। क्या सोम्यानन्द जी महर्षि दयानन्द कृत ग्रन्थों में से कोई प्रमाण ढूंढकर प्रस्तुत करने की कृपा करेंगे कि जिसमें आत्मा और परमात्मा में अंश और अंशी का सम्बन्ध बताया गया हो?

वैसे युक्ति से भी आत्मा और परमात्मा में अंश–अंशी का सम्बन्ध सिद्ध नहीं किया जा सकता। क्योंकि अंश कभी नित्य, अनुत्पन्न, अनादि, अविनाशी, शाश्वत, सनातन नहीं हो सकता। अंश कभी न कभी उत्पन्न हुआ होता है। वह सदैव सादि और विनाशी ही होता है। काल के किसी क्षण में जब वह अपने अंशी से पृथक् होता है, तभी उसकी अंश के रूप में सत्ता बनती है। जिसका आरम्भ होता है, उसका अंत होता ही है। अब विचार करें कि वेद एवं समस्त वैदिक ग्रन्थों में तो आत्मा (= जीव अथवा जीवात्मा) को अनादि चेतन सत्ता के रूप में ही वर्णित किया गया है। और चेतन पदार्थ कभी किसी का अंश नहीं हो सकता। अंश सदा अवयवी पदार्थ का होता है। अतः अंश और अंशी का सम्बन्ध केवल और केवल जड़ अथवा प्राकृतिक कार्य पदार्थों में ही सम्भव है। दो चेतन पदार्थों में अंश और अंशी का सम्बन्ध हो ही नहीं सकता। आत्मा को परमात्मा का अंश मानने पर न केवल आत्मा ही को, बल्कि परमात्मा को भी अनित्य और विनाशी मानना पड़ेगा। क्योंकि जिस पदार्थ के अंश होते हैं अर्थात् जो पदार्थ खंड–खंड में विभाजित होता है, अपने को विखण्डित करता है, वह कभी नित्य या अविनाशी हो ही नहीं सकता। महर्षि दयानन्द जी ने सत्य ही लिखा है – **''जीव उत्पन्न कभी न हुआ, अनादि है।''** (सत्यार्थ प्रकाश, सप्तम समुल्लास)

इसी समुल्लास में आगे महर्षि जी ने जीव को **''ब्रह्म से भिन्न, अनादि, अनुत्पन्न और अमृत–स्वरूप''** लिखा है। अतः सोम्यानन्द जी का उक्त कथन कभी मान्य नहीं हो सकता। वैदिक धर्म के संन्यासी को वेद तथा युक्ति विरुद्ध बातें नहीं लिखनी चाहिएँ।

दूसरी बात–क्योंकि अंश अंशी से ही पृथक् होकर अस्तित्व में आता है, इसलिए उसमें वही सारे गुण विद्यमान होने चाहिएँ, जो अपने अंशी में होते हैं। जैसे सेब के टुकड़े में अर्थात् सेब के अंश में वही सारे गुण होते हैं, जो अंश सेब में होते हैं। इसी आधार पर उस टुकड़े को सेब का अंश माना जा सकता है। हमारे शरीर में जो खून होता है, उसके परीक्षण के लिए डाक्टर सारे खून का परीक्षण नहीं करता है, केवल अल्प मात्रा में खून लेकर उसी का परीक्षण करता है। उस अंश मात्र खून के परीक्षण को ही हमारे सारे खून का परीक्षण मान लिया जाता है। अतः अंश और अंशी में गुणों का साधर्म्य होता है–यह बात सर्वसम्मत है। अब आत्मा और परमात्मा में अंश और अंशी का सम्बन्ध है– ऐसा मानने वाले लोग विचार करें कि क्या आत्मा में वही सारे गुण विद्यमान हैं, जो परमात्मा में हैं? या कुछ वैधर्म्य भी पाया जाता है? महर्षि दयानन्द जी के निम्न मंतव्य हमें सदैव स्मरण रखने चाहिएँ–

(1) **''जीव और ईश्वर स्वरूप और वैधर्म्य से भिन्न, और व्याप्य–व्यापक और साधर्म्य से अभिन्न हैं।''** (स्वमंतव्यामंतव्य प्रकाश)

(2) **''जहां जहां सर्वज्ञादि विशेषण हों, वहीं वहीं परमात्मा और जहां जहां इच्छा द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख और अल्पज्ञादि विशेषण हों, वहां वहां जीव का ग्रहण होता है।** (सत्यार्थ प्रकाश, प्रथम समुल्लास)

अपनी मिथ्या कल्पना के समर्थन में सोम्यानन्द जी ने शतपथ ब्राह्मण (बृहदारण्यक उपनिषद् 3.7.22) का **''य आत्मनि तिष्ठन्नात्मनो...''** यह प्रसिद्ध वाक्य उद्धृत किया है। इसी वाक्य की व्याख्या महर्षि जी ने सत्यार्थ प्रकाश के सप्तम समुल्लास में लिखी है, जिसमें उन्होंने 'आत्मा' को जीव का पर्यायवाची शब्द माना है और लिखा है– **''जो परमेश्वर आत्मा अर्थात् जीव में स्थित और जीवत्मा से भिन्न है; जिसको मूढ जीवात्मा नहीं जानता कि वह परमात्मा मेरे में व्यापक है।''** यहां दयानन्द जी ने आत्मा, जीव और जीवात्मा–ये तीनों शब्द एक ही पदार्थ के लिए प्रयुक्त किये गये हैं। जैसे कि–

सत्यार्थ प्रकाश के तृतीय समुल्लास में न्याय दर्शन के **''इच्छाद्वेष.....''** इस सूत्र में सूत्रकार ने 'आत्मा' शब्द का प्रयोग किया है, मगर महर्षि जी ने इस सूत्र की व्याख्या में 'जीवात्मा' शब्द का प्रयोग किया है, मगर महर्षि जी ने इस सूत्र की व्याख्या में 'जीवात्मा' शब्द का प्रयोग किया है। फिर अगले वैशेषिक दर्शन के **''प्राणापान....''** इस सूत्र में इसी द्रव्य के लिए 'आत्मा' शब्द का प्रयोग किया गया है। फिर सप्तम समुल्लास में इन्हीं दो सूत्रों की पुनः व्याख्या की गई है, जिनमें 'जीव' एवं 'जीवात्मा' दोनों शब्दों का प्रयोग महर्षि जी ने एक ही पदार्थ के लिए किया है। इसी प्रकार नवम समुल्लास में मुक्ति के प्रकरण में 'मुक्त जीव', 'मुक्ति में जीवात्मा', 'ईश्वर के स्वरूप में जीवात्मा की स्थिति' आदि शब्दों के किये गये प्रयोग से यही सिद्ध होता है कि महर्षि दयानन्द जी की दृष्टि में जीव और जीवात्मा में कोई भेद नहीं है, एक ही पदार्थ या द्रव्य के नाम हैं, और उसी के लिए वे 'आत्मा' शब्द का प्रयोग भी करते हैं। अतः जीव, जीवात्मा और आत्मा–तीनों में कोई तात्त्विक भेद नहीं हैं। एक ही वस्तु के ये तीन नाम हैं। मुंडकोपनिषद (3.1.9) के **''एषोऽणुरात्मा चेतसा वेदितव्यः''** तथा बृहदारण्यक उपनिषद् (4.4.2) में भी 'आत्मा ' शब्द का प्रयोग जीव के लिए किया गया है। न्याय दर्शन के भाष्यकार वात्स्यायन मुनि ने 3.2.62 वें सूत्र के भाष्य में जीव के लिए 'आत्मा' शब्द का प्रयोग किया है। यह भिन्न बात है कि उपनिषद् आदि कई ग्रन्थों में प्रकरण अनुसार कभी कभी 'आत्मा' शब्द परमात्मा के लिए भी प्रयुक्त होता है, जिसकी व्युत्पत्ति आधारित व्याख्या सत्यार्थ प्रकाश के प्रथम समुल्लास में की गई है।

अपने लेख में सोम्यानन्द जी ने लिखा है– ''जीव में आत्मा परमात्मा का ही व्यापक अंश है।'' यह बड़ा ही भ्रामक कथन है। 'जीव में आत्मा' क्या होता है? जीव ही आत्मा है, और परमात्मा उसी में व्यापक है। बस, यही सरल वास्तविकता है।

सोम्यानन्द जी ने आगे लिखा है– ''आत्मा और जीव का अनादि सनातन सम्बन्ध है।'' जब आत्मा और जीव एक ही सत्ता के दो नाम हैं, तब दोनों में 'अनादि सनातन सम्बन्ध' क्या हो सकता है? हां, अगर यहां 'आत्मा' का प्रयोग परमात्मा के लिए किया गया हो तो कथन की संगति ऐसे लगायी जा सकती है कि दोनों में अर्थात् परमात्मा और जीव में व्यापक–व्याप्य आदि का अनादि सनातन सम्बन्ध है। मगर सोम्यानन्द जी का अभिप्राय तो भिन्न ही है।

सोम्यानन्द जी ने एक और विचित्र बात लिखी है– ''जीव में आत्मा (परमात्मा) व्यापक होने से जीव में चेतना का गुण व्याप्त रहता है।'' सोम्यानन्द जी को इतना तो ज्ञात ही होगा कि जीव चेतन अनादि पदार्थ है। वह स्वभाव से ही चेतन है। परमात्मा ने उसे चेतन नहीं बनाया है, परमात्मा ने उसे चेतनता प्रदान नहीं की है। चेतनता जीव का अपना स्वाभाविक गुण है। किसी के द्वारा प्रदान किया गया गुण स्वाभाविक नहीं, बल्कि नैमित्तिक होता है। अतः आपका कथन उचित नहीं है। हां, परमात्मा सर्वत्र विद्यमान होने से उसकी स्वाभाविक चेतनता सर्वत्र विद्यमान है, क्योंकि द्रव्य और उसके स्वाभाविक गुण में समवाय सम्बन्ध होता है।

सोम्यानन्द जी ने आगे लिखा है– ''जीव और आत्मा (परमात्मा) संयुक्त रूप से अनादि हैं, अनन्त हैं।'' यहां संयुक्त रूप से' का ग़लत प्रयोग किया गया है, जो निरर्थक है। वास्तव में जीव और परमात्मा – दोनों अनादि हैं। काल की दृष्टि से दोनों समान रूप से अनन्त और नित्य भी हैं।

लेखक ने लिखा है– ''अंश और अंशी अविभक्त होने के कारण एक ही है।'' यह भी मिथ्या कथन है, क्योंकि अंश अंशी से विभक्त हुए बिना, पृथक् हुए बिना अंश के रूप में आ ही नहीं सकता। परमात्मा अनन्त, अखंडनीय, निरवयव और सर्वव्यापक सत्ता होने से उसके अंश की कल्पना निराधार है। उसका तथा कथित अंश अपने सर्वव्यापक अंशी परमात्मा से अपने आप को पृथक् कैसे कर पायेगा? अंश सर्वव्यापक परमात्मा से अलग होकर जायेगा कहां? जब अपने आप को परमात्मा से पृथक् ही नहीं कर पायेगा तो फिर अंश बन ही कैसे सकता है?

सोम्यानन्द जी ने आगे लिखा है– ''उपासना जीव परमात्मा की करता है। आत्मा परमात्मा की उपासना नहीं करता।'' क्या टिप्पणी करें ऐसी कल्पित बात पर? लेखक को ऐसी ऊटपआंग बातें नहीं लिखनी चाहिए थीं। दर्शन शास्त्रों या कम से कम सत्यार्थ प्रकाश से सहायता ली गई होती तो सम्भवतः ऐसी भूलें नहीं होतीं।

अपने लेख के अंत में सोम्यानन्द जी ने महर्षि दयानन्द के वेद भाष्य के 2–3 प्रमाण देकर यह बताने का असफल प्रयास किया है कि आत्मा और परमात्मा में अंश–अंशी का सम्बन्ध है। वास्तव में दयानन्द भाष्य में ऐसी कोई बात ही नहीं है कि जिससे लेखक की कपोल कल्पित बात सिद्ध हो सके।

7.18 टाउनशिप,
पो. नर्मदानगर,
जि. भरुच, गुजरात– 392015

चमत्कारी तीसरी आँख धारक बाबा या मांस, शराब, चिलम व पाखण्ड प्रेरक बाजा

"दरबार में आओ, जय निर्मल बाबा की", श्रद्धा रखो बैंक द्वारा स्थान सुरक्षित करो

● आचार्य आर्य नरेश

बाजा बज रहा था, दायें बायें घूम रहा था तथा उपस्थित जनता को कह रहा था "शक्तियाँ दरबार पर विश्वास रख कर आने वाले सब जनों को मिलेंगी। चाहे आप दरबार में न आकर दूरदर्शन से ही सामने बैठ कर सुन रहे हैं उन शक्तियों की कृपा सब पर बराबर होगी। आप यदि शाकाहारी हैं तो वे उसी ढंग से कृपा करेगी। यदि आप सुरा–मांसाहारी हैं तो वे शक्तियां फिर भी अपने ढंग से पूर्ण कृपा करेंगी। मांसाहारी को शाकाहारी न होने की चिन्ता न करनी चाहिए, न ही आप को यह छिपाने की ही आवश्यकता है कि आप मांस खाते व शराब पीते हैं। भैरों काली आदि की नॉनवेज शक्ति आप को इस दरबार में हर समस्या के समाधान में पूर्ण सहायता करेगी। शक्तियों पर पूर्ण विश्वास कीजिए। दरबार से जुड़े रहिए किसी प्रकार का संशय मत कीजिए। जो यहाँ पूर्ण विश्वास के साथ आएंगे उन के सब कार्यों की सिद्धि होगी। रुके हुए सब कार्य हनुमान जी की, राम जी, श्रीकृष्ण जी की व भोले शंकर जी की शक्ति से सिद्ध होंगे। दुर्गा की और अन्यदेवों की शक्तियां इतना कृपा करेंगीं कि आप के धन–भण्डारे ऐसे भरेंगे कि आप आश्चर्य चकित हो जाएंगे। जितना हम बताते हैं, बस उतना ही कीजिए बीच में किसी और मन्त्र पूजा को मत लाइए, नहीं तो शक्तियां नाराज़ हो जाएंगी। समय–समय पर हनुमान, शिव, राम,कृष्ण व दुर्गाजी के मन्दिर पर सौ सौ पांच सौ रुपए व प्रसाद चढ़ाते रहिए। गणेश जी को मत भूलिए अपने क्षेत्र तथा दूर के मन्दिरों पर भी चढ़ावा चढ़ाते रहें शक्तियां कृपा करेंगी। अलमारी में नोट की गड्डी रखो", काले पर्स रखो, लक्ष्मी बरसेगी, यदि बाबा के पास धन–बरसाने की शक्ति है तो बैंक–ड्राफ्ट क्यों। यदि निर्मल बाबा की शक्तियों से काले पर्सों में धन के स्थान पर भ्रष्टाचार से लाखों करोड़ धन विदेश से भारत आ जाए एवं अफजल कसाब की रुकी फांसी खुले तो हम 'बाबा को चमत्कारी बाबा मान लें।

मुसलमान दरिन्दों ने कुरआन के अनुसार मूर्ति–पूजक को काफिर समझकर कासिम से लेकर टीपू सुलतान तक के गौरी, गजनी, बाबर, औरंगज़ेब ने उपरोक्त सब देवी देवताओं के लगभग बीस हज़ार मन्दिर तोड़े। उन शक्तियों ने लाखों काटे गए भक्तों को तो छोड़ो अपने आप को ही क्यों टूटने से नहीं बचाया? औरगंज़ेब द्वारा काशी–विश्वनाथ तथा मथुरा कृष्ण मूर्ति को तोड़ा, गौमांस से लपेटा तब शक्तियां कहां थीं? श्रीराम मन्दिर अयोध्या को तोड़ ढाई लाख लोगों के कत्ल से बहते खून द्वारा बाबरी ढांचा बनाया गया तब शक्तियां कहां थीं? मूर्तियों को जिन्हें लोग निर्मल बाबा की ध्वनि के समान शक्तिशाली कार्य सिद्धि, धन वृद्धि व विघ्न निवृति का साधन मान पूजते थे उन राम, कृष्ण, शिव, हनुमान, दुर्गा, भैरों ने अपने आपको मुसलमानों द्वारा शौचालयों में लगने से क्यों न बचाया? लुटती ललनाओं की लाज और लुटते खरबों रुपयों के सोना–चांदी–हीरे मोतियों को क्यों न बचाया? यदि तब शुद्ध गोघृत, शुद्ध केसर, चरित्रवान् पुजारियों द्वारा न बचाया जा सका तो आज चोटी जनेऊ रहित वर्णाश्रम व्यवस्था हीत डाफ्ट–लोभी निर्मल बाबा की पुकार कैसे बचा लेगी? शक्ति है तो देश को पाक–चीन आतंकवाद से बचाएँ।

कहां से आए हो? यह पेड़ा क्यों आ रहा है? आप मथुरा गए थे? न पेड़ा चढ़ाया नहीं खाया। जाओ श्रद्धा से दो पेड़े बनाकर गटर में डाल देना सारे काम रुके हुए ठीक हो जाएंगे। कहां से आ रहे हैं? शराब की बोतल आ रही है। भैरो पर गए थे, शराब चढ़ती देखी थी, परन्तु चढ़ाई नहीं। जाओ भैरों पर शराब चढ़ा देना और थोड़ी प्रसाद समझ पी लेना, सारे काम हो जाएंगे। कहां से आए हो? सैलून (नाई) आ रहा है। कब गए थे? ओ हो सस्ते पर गए थे। जाओ किसी मंहगे से सैलून A.C. पर जाकर बाल शेव करवाना सारे काम पूरे हो जाएंगे। कहां से आई हो बेटी? यह फोन (अदृश्य) आ रहा है। कौन सा फोन रखती हो? 1500/– का नोकिया, नहीं कोई 5 या 6 हजार का फोन रखो सारे काम हो जाएंगे। पिता जी डाटेंगे तो डरना मत। कहां से आए हो चिलम आ रही है। कभी पी थी? नहीं। अच्छा जाओ दो बाबाओं को चिलम पिला देना सारे काम पूरे हो जाएंगे। शिव को भांग चढ़ाना। कहां से आए? गाड़ी बीच में आ रही। कब यात्रा की थी? साधारण डिब्बे में बैठे थे। जाओ! फस्ट या सैकण्ड कलास ए.सी. में यात्रा करना सब काम पूर्ण होंगे। कहां से आए? हवाई जहाज आ रहा है। क्या खाया था? डबल रोटी नहीं खाई अब बिस्कुट के साथ खाना, रुकी हुई शक्तियां आ जाएंगी। बाबा जी की तीसरी आंख यदि भारत से बाहर से 400 लाख करोड़ दिलादे तो सच्चा मान लें।

– वैदिक गवेषक
उदगीय–स्थली (हिमाचल)

कर्मफल सिद्धांत–एक अलग दृष्टिकोण

● अभिमन्यु खुल्लर

लगभग डेढ़ वर्ष से दो प्रश्नों ने लेखन कार्य को ठप्प कर दिया। बैताल के पिशाच की तरह ये प्रश्न हर समय कंधे पर सवार रहते और इनके समाधान के लिये जो भी साहित्य मिलता, उसी में डूब जाता। निश्चित रूप से जो चीज़ चौबीस घन्टे मन मस्तिष्क पर हावी रहती हैं वह शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य को हिलाकर रख देती है। मेरे साथ भी वही हुआ। खैर इस बात को यही छोड़ता हूँ।

वे दो प्रश्न हैं – ईश्वर सिद्धि और कर्मफल सिद्धान्त। ये दोनों ही प्रश्न उच्च कोटि के विद्वानों, ऋषि–मुनियों के चिंतन–मनन के विषय हैं। मैं नादान न जाने क्यों फंस गया?

जब से होश संभाला है तभी से कर्मफल की निश्चितता के विषय में कभी असमंजस की स्थिति नहीं बनी। कारण यह है कि भारतीय मनीषा में यह सिद्धान्त इस तरह आबद्ध है कि अपढ़ से लेकर सर्वोच्च कोटि के मस्तिष्क भी इसकी अपरिहार्यता को लेकर नू–नच नहीं करते। स्वयं महर्षि दयानन्द महाराज भी इसकी अनिवार्यता को मानते थे और प्रतिपादन करते थे। हमारे महर्षि की यह विशेषता है कि उन्होंने आंख बन्द कर किसी भी बात को स्वीकार करने से स्पष्ट रूप में मना किया है। इसलिये अपने मन में उमड़ते–घुमड़ते विचारों को शाब्दिक रूप दे रहा हूँ। संभवतः मुझसे श्रेष्ठ विचारशील जन मेरा व मुझ जैसे अनेक लोगों का मार्गदर्शन कर सकें।

जीवात्मा सरल भाषा में कहें तो मानव कर्मशील प्राणी होने के कारण कर्म करता है। मन,वचन व क्रिया से कर्म करता है। पाप–पुण्य की अवधारणा कि अनुसार इन तीनों से या तीनों में से किसी भी एक से किए गए कर्मपाप–पुण्य की श्रेणी में परिगणित किए जाते हैं।

इसी अवधारणा के अनुसार महर्षि दयानन्द ने सूत्र दिया कि पाप–पुण्य जब बराबर होते हैं तब मनुष्य जन्म प्राप्त होता है। बस समस्या इसी तुला पर मनुष्य जन्म को लेकर प्रारंभ हुई।

महर्षि दयानन्द के समय भारत की जनसंख्या लगभग 25 करोड़ थी, 2011 की जनसंख्या गणना में 121 करोड़ हो गई है और 2050 में आनुमानिक जनसंख्या 170 करोड़ बताई गई है। सोचिए, क्या यह जनसंख्या वृद्धि पाप–पुण्य की समानता वाले मनुष्यों की हो रही है? जबकि इस 121 करोड़ की जनसंख्या में 80 करोड़ से अधिक गरीबी रेखा से नीचे वाली मनुष्य संख्या है जिसके जिम्मे दो वक्त की रोटी जुटाना भी मुश्किल है और वह दो रोटी नमक–मिर्ची से अथवा पानी वाली घटिया किस्म की दाल व पानी वाली सब्जी से खाकर जीवित रहने को मजबूर है। फिर भी जनसंख्या वृद्धि में इसी स्तर के लोगों को सर्वाधिक योगदान है। क्या जनसमुदाय का यह वर्ग मनुष्य जीवन की महत्ता को समझ पाने की योग्यता अर्जित कर पाएगा? इस वर्ग के बाद 20 करोड़ का वर्ग निम्न मध्यम आय का होगा, जो भोजन की जुगाड़ तो किसी प्रकार कर पा रहा होगा लेकिन पौष्टिक पदार्थों दूध–घी, तेल, फल आदि के अभाव में रक्त की कमी, शारीरिक व मानसिक दुर्बलता का शिकार है। अगर विश्व परिदृश्य में इस आधार को देखें तो अफ्रीका के अनेक देश लीबिया, केन्या आदि भुखमरी के शिकार हो रहें हैं। परिणाम क्या हो रहा है–

मानवों का यह विशाल समुदाय मनुष्य की निकृष्टतम वृत्तियों का आश्रय स्थल बना हुआ है। चोरी–डकैती, बलात्कार, हत्या, बच्चों और महिलाओं

शेष पृष्ठ 11 पर ☞

महाराणा प्रताप – कहानी और इतिहास में

● राजेशार्य आट्टा

प्रिय पाठकवृन्द! महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश के एकादश समुल्लास के अंत में आर्यावर्तदेशीय राजवंशावली देते समय लिखा है कि यदि ऐसे ही हमारे आर्य सज्जन लोग इतिहास और विद्या पुस्तकों का खोजकर प्रकाश करेंगे तो देश को बड़ा ही लाभ पहुँचेगा। और पूना में 15 व्याख्यानों में से 6 व्याख्यान इतिहास विषय पर दिये थे। हमारे देश की बहुत सी ऐतिहासिक सामग्री काव्य में है, जिसमें कुछ अंशों में अतिशयोक्ति व कवि–कल्पना (काव्य–चमत्कार) से इन्कार से नहीं किया जा सकता। जिसके कारण इतिहास (वास्तविक घटना) कम और कहानी (काल्पनिक) अधिक प्रचलित हो गई। वह चाहे भागवत आदि पुराण हों, पृथ्वीराज रासो हो या चारण व भाटों के ग्रन्थ हों। यही कारण है कि राजस्थान के इतिहास पर इतना महान परिश्रम करने के बाद भी कर्नल टॉड के इतिहास में बहुत सी भूलें रह गई, क्योंकि उसने बहुधा चारणों भाटों आदि के गीतों, ख्यातों और प्रचलित दन्तकथाओं के आधार पर ही अपने इतिहास की नींव रखी। प्रसिद्ध इतिहासकार गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने लिखा है कि उस (कर्नल टॉड) के राजपूताने के इतिहास में जैसे अन्यत्र कई भूलें रह गई हैं, वैसे महाराणा प्रतापसिंह के जीवन–चरित्र में की गई बड़ी भूलें रह गई हैं और कई आधारशून्य कल्पित बातें भी लिखी गई हैं, जिनका निराकरण करना आवश्यक है। महाकवि श्याम नारायण पाण्डे ने भी 'हल्दीघाटी' में कर्नल टॉड के आधार पर ही लिखा है। अतः यह काव्य भी पूर्णतः निर्दोष नहीं रह पाया और समाज में महाराणा प्रताप का इतिहास कहानी के रूप में प्रचलित हो गया। इतिहासकार द्वारा सजग किये जाने पर भी हम इन कहानियों का मोह नहीं छोड़ पा रहे हैं। सत्य को ग्रहण करने और असत्य को छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहने वाले आर्य समाज की पुस्तकों व पत्र–पत्रिकाओं में भी यही सब चलता है, जिसके विषय में लगभग 80 वर्ष पूर्व ओझा जी ने लिखा था–

"महाराणा प्रतापसिंह को शाही सेना ने इस तरह घेर लिया कि उसे पाँच बार बना हुआ भोजन छोड़ना पड़ा और उसके पास द्रव्य न होने के कारण वह मेवाड़ छोड़कर सिंध को चला, परन्तु मार्ग में मन्त्री भामाशाह के अपनी सारी सम्पत्ति नज़र कर देने पर उसने वह विचार छोड़ दिया था तथा बिल्ली के द्वारा रोटी उठा ले जाने पर अपनी पुत्री के हृदयवेधी चीत्कार से विचलित होकर उसने बादशाह अकबर को अपने कष्ट कम करने को लिखा इत्यादि अनेक बातें खोज से अप्रमाणिक सिद्ध हुई हैं।"

महाराणा प्रताप जयन्ती के उपलक्ष्य में आर्य समाज की कई पत्रिकाओं में लेख, कविता आदि छपे। मैं आदरणीय लेखकों और कवियों की पवित्र भावना का सम्मान करते हुए कुछ टिप्पणी करना आवश्यक समझता हूँ, ताकि पाठक सत्य से अवगत हो सकें।

राणा द्वारा मानसिंह का यह जो मान हरण था।

हल्दी घाटी के हार का यही मुख्य कारण था।।

इसका अर्थ तो यह हुआ कि हल्दी घाटी की लड़ाई प्रताप–अकबर की लड़ाई न होकर प्रताप–मानसिंह की लड़ाई थी और इसका मुख्य कारण अकबर द्वारा मेवाड़ को प्राप्त करना व महाराणा प्रताप द्वारा अपने चित्तौड़ (जिसे अकबर ने 1568 ई. में जीत लिया था) को प्राप्त करना न होकर महाराणा द्वारा मानसिंह का अपमान करना था, जिसका बदला लेने के लिए मानसिंह मुगल सेना लेकर हल्दी घाटी में आया था।

यह तो ठीक है कि जलाल खाँ कोरची के असफल होने पर अकबर ने पुनः मानसिंह को महाराणा प्रताप से सन्धि करने भेजा और स्वाभिमानी राणा ने गुलामी की बेड़ियाँ पहनने से मना कर दिया अर्थात् मानसिंह की बात का मान नहीं रखा गया, पर भोजन के समय मानसिंह का अपमान राणा की मर्यादा के विपरीत है। श्री राजेन्द्र शंकर भट्ट और डॉ. देव कोठारी ने लिखा है कि यदि मानसिंह का अपमान हुआ था तो छह महीने बाद उसके पिता भगवानदास प्रताप से मिलने क्यों आते?" मानसिंह अप्रैल 1573 में प्रताप से मिलने आये थे। अक्टूबर में राजा भगवानदास महाराणा से मिलने आये और दिसम्बर में राजा टोडरमल को भेजा गया। हल्दीघाटी का युद्ध तो तीन साल बाद जून 1576 ई. में हुआ। फिर मानसिंह तीन साल तक क्यों प्रतीक्षा करता रहा। मानसिंह तो हिन्दू था, प्रताप ने तो जमाल खाँ कोरची का भी सम्मान किया था।

डॉ. राजेश्वर व्यास के अनुसार – "मानसिंह आमेर के युवराज थे, अतः शिष्टाचार के नाते मेवाड़ के युवराज अमरसिंह का ही उनके साथ भोजन करना उचित था।"

आजकल भी तो राष्ट्रपति का स्वागत राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री का स्वागत प्रधानमंत्री करते हैं। अतः स्पष्ट है कि हल्दी घाटी और उसके बाद भी लगभग 9 वर्ष प्रताप–अकबर संघर्ष का मुख्य कारण अकबर की राज्य लिप्सा था, मानसिंह का अपमान नहीं।

'आर्यजगत्' के जनवरी व जून के अंकों में महाराणा प्रताप से सम्बन्धित लिखा है–"कृतघ्न मानसिंह ने अपने अपमान का बदला लेने के लिए अकबर के कान भर दिये थे। तदनुसार अकबर ने अपने पुत्र सलीम को मानसिंह के साथ युद्ध में भेज दिया। यह युद्ध 18 जून 1576 ई. से हल्दी घाटी में हुआ था।"

मानसिंह के अपमान की चर्चा ऊपर आ चुकी है। अकबर ने अपने पुत्र सलीम को मानसिंह के साथ नहीं भेजा। क्योंकि उनका जन्म बड़ी मिन्नतों के बाद 30 अगस्त 1569 को हुआ था। हल्दी घाटी युद्ध के समय वह लगभग सात वर्ष का था। शाही इतिहासकारों ने उसका कहीं भी वर्णन नहीं किया था।

"निर्लज्ज मानसिंह अपनी बहिन जाधाबाई को अकबर के अंक में सौंपकर अपने आपको बड़ा भाग्यशाली मानता था।"

अकबर की बुआ हीरकंवर (मरियम उज्जमानी) अकबर को सौंपी गई थी, जो भ्रांतिवश जोधाबाई कहलाने लगी, अन्यथा जोधाबाई तो जहाँगीर (सलीम) की पत्नी थी, जो जोधपुर के मोटाराजा उदयसिंह की पुत्री जगत गुसाईं थी। जोधपुर की होने के कारण वह जाधाबाई कहलाई। मानसिंह की बहन तो मानबाई थी, जो जहाँगीर के अंक में सौंपी गई थी।

"उस अग्नि–श्लाका पुरुष (महाराणा प्रताप) ने मन में शिव–संकल्प किया – मुझे चित्तौड़ मुगलों से छीनना है। बस फिर क्या था, वह रण–बांकुरा चल पड़ा और देखते ही देखते चित्तौड़ के किले पर सूर्यध्वज लहरा दिया। धूर्त अकबर देखता ही रहा गया और मुगल सेना वहाँ से भाग खड़ी हुई।"

महाराणा का संकल्प तो यही था, पर मानसिंह जैसे मानहीन राजपूतों व अपने जगमाल–सगर जैसे भाइयों के देशद्रोह के कारण वे उसे पूरा नहीं कर पाये। महाराणा की मृत्यु (19 जनवरी 1597) तक चित्तौड़ अकबर के ही अधिकार में रहा और बाद में राणा अमरसिंह के साथ सन्धि (1615 ई.) की शर्तों के अनुसार चितौड़ दुर्ग प्राप्त हुआ। यह अलग बात है कि 1585 ई. के बाद अकबर ने राणा प्रताप पर आक्रमण नहीं किया और 9 साल के संघर्ष के बाद (1576–1585) भी उसे कुछ भी नहीं मिला।

"जयमाल अपने बड़े भाई प्रताप को हटाकर युवराज बनने के प्रयास में जब असफल हो गया तब रूठकर वह अकबर से जा मिला। .... उस (अकबर) ने जयमाल को सिरोही का आधा राज्य दे दिया। इससे सिरोही के राज सुरताण और जयमाल में युद्ध छिड़ गया। इस युद्ध में जयमाल मारा गया। इससे राणा उदयसिंह को गहरा आघात लगा।"

जगमाल की माँ धीरबाई (भटियानी रानी) से विशेष प्रेम होने के कारण राणा उदयसिंह मरने से पहले चुपचाप उसके बेटे को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर गये, पर उदयसिंह की मृत्यु के बाद इस बात का पता चलने पर मेवाड़ के महाराणा की घोषणा करने के अधिकारी कृष्णदास चूण्डावत ने जगमाल से कहा कि आपकी बैठक गद्दी के सामने है। सिंहासन का अधिकारी तो प्रताप है। यह 28 फरवरी 1572 का दिन था और 17 अक्टूबर 1583 को जगमाल मर गया अर्थात् उदयसिंह की मृत्यु के लगभग 12 वर्ष बाद जगमाल मरा, फिर राणा उदयसिंह को आघात कैसे लगा?

हल्दीघाटी के मैदान में मानसिंह के पक्ष में लड़ रहे शक्ति सिंह का राणा प्रताप से मिलन का वर्णन बड़ा मधुर लगता है, पर शक्तिसिंह तो अकबर द्वारा चितौड़ पर आक्रमण करने (1567–68) से पूर्व ही अकबर के पास से मेवाड़ चला आया था और हल्दी घाटी युद्ध के समय भी शाही इतिहासकारों ने अपनी सेना में कहीं भी उसका उल्लेख नहीं किया है। हाँ, दिवेर की लड़ाई के बाद शक्तिसिंह के बेटे रावत भाण आदि महाराणा प्रताप व अमरसिंह के सहयोगी रहे।

"अन्ततः इस महावीर (राणा प्रताप) ने माघ शुक्ल ।। संवत् 1653 तदनुसार 18 जनवरी 1578 को चावड़ा नाम स्थान पर अंतिम सांस ली।"

महावीर के महाप्रयाण की तिथि तदुनसार 19 जनवरी 1597 बनती है। "वनाञ्चलों में रहकर अपने निष्ठावान सैनिकों के साथ महाराणा प्रताप ने मुगलों के नाकों चने चबवा दिये, परन्तु हार नहीं मानी। इसका दुष्परिणाम यह भी हुआ कि सैनिकों का वेतन देने तथा अन्य परिवारिक कार्यों के लिए फूटी

शेष पृष्ठ 11 पर ☞

'खान' उपनाम या पदवी की गैर–इस्लामी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

● हरिकृष्ण निगम

क्या प्रचलित 'खान' उपनाम की जड़ों की पृष्ठभूमि गैर–इस्लामी हो सकती है? इस पर अनेक लोगों का विश्वास नहीं होगा पर यदि हम मध्य युगीन इतिहास देखें तो पायेंगे कि विशाल मंगोल साम्राज्य जो एक समय मेसोपोटामिया या इराक की युफ्रेटस नदी के किनारे से लेकर चीन तिब्बत व आज के रूस से लेकर प्रशान्त महासागर तक फैला था वहां लगभग 150 वर्षों तक चंगेज खान के वंशज सत्ता में रहे थे और बौद्ध धर्म के व्याप्त होने के कारण उन्होंने अनेक तरह की पदवियां धारण की थीं, जैसे खान, सम्राट्, सुल्तान, राजा, शाह, अमीर और यहां तक कि दलाई लामा भी मूलतः मंगोल पद्वी थी। अगली सात शताब्दियों तक उस विस्तृत क्षेत्र में चंगेज् खान के वंशज राज्य करते थे। मुगल वंश, जिसने भारत में लम्बे समय तक शासन किया भी चंगेजी चुगताई वंश की ही एक शाखा थी। रूस के गोल्डन होर्ड कहलाने वाले शासक हों या कुबलाई खान के वंश के चीन की युवान राजवंश की शाखा हो अथवा फारस या इराक के हलाकू के बाद के वंशज हों , सभी मंगोल साम्राज्य के शाही परिवार की शाखा से जुड़े थे।

एक विश्वप्रसिद्ध नृवंश शास्त्री जैक वेदर फोर्ड ने अपने शोध–ग्रंथ *'गेन्गिज् खानः एण्ड द मेकिंग आफ द माडर्न वर्ल्ड'* मे स्पष्ट लिखा है यद्यपि चंगेज खां आक्रान्ता था और अपनी जन जातीय पैतृक सम्पत्ति से ऊपर उठकर बिना धार्मिक भेदभाव के विशाल भूभाग को रौंदता व पददलित करता हुआ अपनी साहसिकता से विशाल साम्राज्य बना सका था। उसने इस्लामी देशों को भी उसी क्रूरता से विजित किया था।

कुबलाई खान चंगेज् खान का पोता था जो मंगोलियाई 'स्टेप्स' के सैकड़ों मील लम्बे घास के मैदानों में जनाडू नामक स्थान पर विशाल महल में रहता था। वह इतने स्वतंत्र विचारों का था कि वह इस्लामी आस्था के प्रति नहीं बल्कि बौद्ध धर्म पर विश्वास करता था। यह भी कहा जाता है कि रोमन पौन्टिफ् ग्रेगरी ने उसे ईसाई बनाने की बहुत कोशिश की थी पर वह असफल रहा था।

तिब्बत में प्रचलित लामा–पद्धति की जड़ें मजबूत करने वाला एक ही व्यक्ति कुबलाई खान था। मार्को पोलो तथा अन्य ब्रिटिश इतिहासकारों के साक्ष्यों से प्रतीत होता है कि कुबलाई खान एक व्युत्पन्नमति राजा था। वह एक उत्तम धर्म का जिज्ञासु था। इसलिए वहां अपने राज्य के विभाजित भागों को एक धर्म में जोड़ने के लिए समय के प्रधान लामा शख्य के साथ ईसाई और इस्लाम धर्मावलम्बी प्रतिनिधि को भी आमंत्रित किया गया था। अनेक विचार विमर्श के बाद कुबलाई खान इस निर्णय पर पहुंचा कि उस समय के चीन से लगे तिब्बत में भी लामा–पद्धति प्रचलित थी। फिर भी उसने बौद्ध धर्म को स्वीकार नहीं किया जब तक प्रत्यक्ष में इसकी महानता सिद्व नहीं होती है। तत्कालीन पोप रोमन पौन्टिफ ग्रेगरी सारे मंगोलों को ईसाई बनाने के सपने देख रहे थे। कुबलाई खां ने पोप को एक पत्र द्वारा उनसे 100 ईसाई आस्था वाले बुद्विमान व्यक्तियों को तर्क द्वारा ईसाई धर्म की महानता सिद्ध करने को कहा। उसने पादरियों से कहा कि यदि तुम्हारा धर्म किसी प्रकार का चमत्कार दिखाए तो मैं उसे स्वीकार करूंगा अन्यथा यदि बौद्ध लामा चमत्कार कर दिखाएगा तो वह बौद्वधर्म स्वीकार करेगा।

राजा द्वारा प्रस्तुत चमत्कार को ईसाई पादरी न दिखा सके पर लामा ने एक ही क्षण में निराधार मद्य के प्याले को राजा के होठों तक पहुंचा दिया। कुबलाई खान ने आश्चर्य चकित होकर लामा पद्धति का बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया। यह सन् 1270 का वर्ष था जब कुबलाई खान ने शाक्य पण्डित को (जो शख्य का लामा था) तिब्बत का शासक बना दिया। कुबलाई खान ने स्वीकृत धर्म का पोषण किया और मंगोलिया आदि देशों में दर्जनों बड़े मठों की स्थापना की। उसी समय का एक बहुत बड़ा मठ उलान बेटर और पीकिंग में बनवाया गया था। इस प्रकार लामा धर्म सुदृढ़ होता गया।

कुबलाई खान का लड़का हलाकू भी इसी प्रकार इस्लामी आस्था में विश्वास नहीं करता था तथा उसको भी ईसाई बनाने के प्रयत्न हुए थे। अपने देश में भी अत्यन्त प्रसिद्ध अंग्रेज़ी लेखक विलियम लैरी डिम्पल ने दशकों पहले अपनी युवावस्था में दूरदराज के 'जनाडू' की यात्रा कर *'प्रिज्नर औफ ज़नाडू'* ग्रंथ में चर्च के हलाकू को धर्मान्तरित करने के असफल प्रयलों पर स्वयं तथ्यों के साथ प्रकाश डाला था। हमारे देश में कदाचित् आज भी अनेक सुविज्ञ पाठकों को यह ज्ञात न होगा कि उपर्युक्त दोनों मंगोल योद्धा मुसलमान नहीं थे और खान की अन्तिम पदवी का मूल कम से कम तेरहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध से लेकर बाद तक गैर इस्लामी था। कई सदी बाद सन् 1640 में मंगोल राजा घुसरी खान ने तिब्बत पर विजय कर *गेल–लग–पा* नामी लामा को शासनाधिकार सौंप कर उसे दलाई लामा पदवी से विभूषित किया। दलाई लामा मंगोल शब्द है जिसका अर्थ होता है–सागर सा महान। ईस्वी सन 1650 से दलाई लामा पुनः पुनः जन्म लेकर तिब्बत के धर्मगुरु और शासक होते रहे हैं। ल्हासा स्थित पोटाला राजभवन के निर्माण और नामकरण का श्रेय प्रथम दलाई लामा को है। चाहे लामाओं का मंत्र एवं तंत्र पर अत्यधिक विश्वास हो, दैवी आपदाओं, दुर्भिक्ष आदि के अतिरिक्त ताबीज या रक्षाकरण के धागों या घरपर लगाए झंडों की बात हो, उन पर भारत की मूल आस्था और हिन्दुओं के अच्छे दिन वार या मुहूर्त आदि के ज्योतिष का भी पूरा प्रभाव है। कहते हैं कि जब चंगेज खां की मृत्यु हुई थी उसके विश्वस्त सैनिकों ने उसे गुप्त रूप से अज्ञात स्थल पर ले जाकर दफनाया था और लगभग अगले आठ सौ वर्षों तक यह स्थान प्रवेश के लिए प्रतिबन्धित था और यह ऐतिहासिक स्मृति स्थल जो एशिया के हृदय में गुप्त रहा कोई भी न जान सका यहां तक कि मंगोल साम्राज्य के पतन और विदेशी सेनाओं द्वारा मंगोलियों के कुछ हिस्से पर विजय पाने पर, मंगोल नागरिक किसी को भी उस कथित पवित्र पूर्वज के स्मारक–स्थान पर नहीं जाने देते थे। यहां तक कि जब अधिकांश मगोलों ने बौद्ध धर्म अपना लिया उसके उत्तराधिकारियों ने बौद्ध भिक्षुओं द्वारा भी उसके नाम से किसी मन्दिर मठ या स्मारक को उस स्थान पर नहीं बनने दिया। बीसवीं शताब्दी में भी इस भय से कि कहीं चंगेज् खां राष्ट्रवादियों की एक जुटता का प्रतीक न बन जाए, सोवियत साम्यवादी दल ने इस स्थान को सुरक्षा कर्मियों के घेरे में रखा। प्रशासन ने इस क्षेत्र को *''अत्यंत प्रतिबंधित क्षेत्र''* के वर्ग में रख दिया था। यह स्थान मास्को के केन्द्रीय प्रशासन के प्रत्यक्ष नियंत्रण में रखा गया था। बाद में इस प्रतिबंधित क्षेत्र को सभी पर्यटकों के लिए प्रतिबंधित कर इसके चारों ओर एक लाख हेक्टेयर का चारों ओर का क्षेत्र भी प्रतिबंधित कर दिया गया। मंगोलिया की राजधानी उलान बेटर के निकट का यह सारा इलाका धीरे–धीरे सोवियत संघ ने एक छावनी में बदल डाला।

सन् 1937 का बात है जब कहा जाता है कि चंगेज खान की आत्मा मध्य मंगोलिया की मून नदी के नीचे के काली शांख पहाड़ियों के पास बने मठ से लुप्त हो गई। यहां आस्थावान लामा सदियों से उसकी आत्मा के लिए प्रार्थना कर उसे संरक्षण देते थे। तीस के दशक के दौरान स्टालिन के आदमियों ने लगभग 30,000 मंगोलों को एक अभियान की श्रृंखला में, जो उनकी संस्कृति को नष्ट करने के लिए थी, मार डाला था। सैन्य बलों ने एक के बाद एक मठ को ध्वस्त किया मठाधीशों व लामाओं को गोली से भून दिया, सभी धार्मिक उपकरणों व पुस्तकालयों को जलाकर उनके साथ धर्मग्रंथों को भी स्वाहा कर दिया। ऐसा कहा जाता है कि इस समय किसी बौद्ध भिक्षु ने गुप्त रुप से चंगेजखां की आत्मा के प्रतीक, घोड़े के बाल वाला झंडा, बचाकर शांख मठ से ले जाकर राजधानी उलान बेटर में रखा था जहां से वह फिर गायब हो गया।

इस सारे ऐतिहासिक प्रकरण से यह सिद्ध होता है कि 'खान' जैसे जाने पहचाने उपनाम या पदवी के पीछे 13वीं शताब्दी और बाद के सैकड़ों सालों के अतीत के पीले पड़े पृष्ठ, इसकी बौद्ध पृष्ठभूमि के कारण, उसे भारत से जोड़ते हैं। यह भी कहा जाता है कि सातवीं सदी तक तिब्बत में कोई चीनी नहीं था। वज्रयान बौद्ध सिद्धान्त तिब्बत की भाषाओं में सुरक्षित था। सातवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में एक मुस्लिम शाहजादे स्यौन सान गेंपो ने पहली बार बौद्ध धर्म स्वीकार कर दो बौद्ध मतानुयायी स्त्रियों से विवाह किया था। उसने ही भारत से सम्योटा नामक व्यक्ति को बौद्ध ग्रंथों के संचय के लिए भेजा था। वह सन् 650 में लौटा था और इस बीच भारत में लिपिदत्त नामक ब्राह्मण तथा पण्डित देवविद् सिंह अथवा सिंह घोल से शिक्षा ग्रहण की और तिब्बती लिपि का निर्माण किया और इसका व्याकरण व्यवस्थित किया। समयोटा को भारत यात्रा के दौरान बहुतसे उपलब्ध बौद्ध ग्रंथों के उद्धरण संकलित करने का अवसर मिला। कहते हैं यही स्मौन सान गैंपो तिब्बत का महान् राजा कहलाता है जिसने सभ्यता और साक्षरता के साथ बौद्ध धर्म को बढ़ाया। उसकी दोनों पत्नियों के नाम थे श्वेततारा और हरितारा। उन्होंने बोधिसत्व, अवलोकितेश्वर आदि मूर्तियां बना मन्दिरों में लगवाईं। इन्हीं सब कारणों से कदाचित् यह मान्यता सत्य प्रतीत होती है कि खान, दोरजे, दलाई लामा सुलतान या राजा जैसी पदवियां मंगोल मूल के बौद्ध अनुयायियों के लिए सामान्य थीं।

ए–1002, पंचशील हाईट्स
महावीर नगर कान्दिवली (प)
मुम्बई–400067

पत्र/कविता

गर्भपात-महापाप

भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों दृष्टियों से गर्भपात मानवता पर कलंक है। हिंसा पर आधारित कोई भी समाज न प्रगतिशील हुआ है और न ही, हो सकेगा। आज समाप्त में अनेकों मानसिक रोगों में गर्भपात एक गम्भीर रोग के रूप में बढता जा रहा है। गर्भपात एक असहाय प्राणी की बर्बर हत्या की करूण कहानी है और सामाजिक पतन की चरम सीमा का द्योतक है। कन्या भ्रूण की हत्या का मूल कारण चाहे कुछ भी हो ममता को सुरक्षित रखना एवं उसकी रक्षा करना नारी का प्रथम कर्त्तव्य है। यदि इसी तरह कन्याओं की गर्भ में हत्या होती रही तो सृष्टि का संतुलन बिगड़ जाने की प्रबल सम्भावना है। जब पृथ्वी पर मानव ही नहीं रहेगें तो यह सुख–समृद्धि किस काम आयेगी? अतः इसे आपात्कालीन मानव अस्तित्व का संकट समझ कर तुरन्त रोकना मानव का प्रथम कर्त्तव्य हो गया है।

गर्भपात के समान दूसरा कोई भयंकर पाप है ही नहीं। संसार का कोई भी श्रेष्ठ धर्म इस महान पाप का समर्थन नहीं करता! कारण कि यह काम मनुष्यता के विरुद्ध है। क्रूर और हिंसक पशु भी ऐसा काम नहीं करते।

संतति–निरोध की भावना से मनुष्य इतना निर्दय, क्रूर और हिसंक हो गया है कि गर्भ में अपनी संतान की हत्या करने में हिचकिचाता नहीं।

गर्भ में स्थित शिशु अपने बचाव के लिये कोई उपाय नहीं कर सकता, प्रतिकार भी नहीं कर सकता, अपनी रक्षा के लिये पुकार भी नहीं सकता, चिल्ला भी नहीं कर सकता, उसका कोई अपराध अथवा कसूर भी नहीं है। ऐसी अवस्था में इस निर्बल, असहाय, निरपराध, निर्दोष, मूक शिशु की हत्या कर देना कितना महान पाप है?

एक कहावत है कि अपने द्वारा लगाया हुआ विष वृक्ष भी काटा नहीं जाता। जिस गर्भ को स्त्री पुरूष मिलकर पैदा करते हैं, उसकी अपने ही द्वारा हत्या कर देना कितनी बड़ी कृतघ्नता है। असंयम तो स्वयं करते हैं परन्तु हत्या निर्दोष गर्भ की करते हैं, यह कितना बड़ा अन्याय है।

गर्भ में आया जीव जन्म लेकर न जाने कितने अच्छे लौकिक तथा पारमार्थिक कार्य करता, लोगों को सन्मार्ग में लगाता, अनेक लोगों की सहायता करता, संत–महात्मा बन कर अनेक लोगों को सन्मार्ग में लगाता, अनेक तरह के अविष्कार करता आदि आदि। परन्तु जन्म लेने से पहले ही उसकी हत्या कर देना कितना पाप है, अपराध है!

जीव मात्र को जीने का अधिकार प्राप्त है। उसको गर्भ में नष्ट करके उसके अधिकार को छीनना महान पाप है।

जब मनुष्य की हत्या को बहुत बड़ा पाप माना जाता है, और अपराधी मनुष्य को कानून फाँसी की या आजीवन कारावास की सजा देता है, तो फिर यह गर्भपात क्या है? क्या यह निरपराध मनुष्य की हत्या नहीं?

सुना है कि गर्भ में आये जीव को अनेक जन्मों का ज्ञान होता है! इसलिए उसे ज्ञानी अथवा ऋषि कहा गया है। अतः गर्भपात करने से एक ऋषि की हत्या होती है। इससे बढ़कर और पाप क्या होगा?

लोग गर्भ परीक्षण करवाते हैं और यदि गर्भ में कन्या हो तो उसका गर्भपात करवा देते हैं। क्या यह नारी जाति को समान अधिकार देना है? क्या यह नारी जाति का सम्मान करना हैं?

संतति–निरोध के द्वारा नारी के मातृ रूप को नष्ट करके उसको केवल भोग्या बनाया जा रहा है। भोग्या स्त्री तो वेश्या होती है। क्या यह नारी जाति का सम्मान करना है?

संतति–निरोध के मूल में केवल सुख भोग की इच्छा विद्यमान है। अपनी संतान इसलिए नहीं सुहाती कि वह हमारे सुख भोग में बाधक है, फिर अपने माता–पिता, भाई–बहन कैसे सुहायेंगे?

जो माता–पिता अपने बच्चों को स्नेहपूर्वक पालन और रक्षा करने वाले होते हैं, वे ही अपने गर्भस्थ बच्चे की हत्या कर देगें तो किससे रक्षा की आशा की जा सकती है? आओ विचार करें कि क्या गर्भपात उचित है

सतीश चन्द्र आर्य
पूर्व प्रधान आर्य समाज
बी–774, आर्य नगर फाजिलका
मो. 94651 22267

आर्य समाज

छोटी नहीं है यह आवाज।
आर्य समाज, आर्य समाज।।

जन–जन में चेतना फैलाती
हर व्यक्ति को राह दिखाती
बुलंदियों तक है पहुंचाती,
ऐसी उत्कृष्ट यह आवाज
आर्य समाज, आर्य समाज।।

भेड़–प्रवृत्ति नहीं है चाहती,
अन्धानुकरण से दूर हटाती,
बना अस्त्र–शस्त्र स्वयं को ही
सत्यान्वेषी यह बनाती
ऐसी उज्ज्वल यह आवाज
आर्य समाज, आर्य समाज।।

जो भी इस राह पर है चलता,
चमक दिनों–दिन आगे बढ़ता,
रास्ते में आता जो रोड़ा
बन प्रेरणा दूर हटाती
ऐसी है यह आवाज
आर्य समाज, आर्य समाज।।

इहलोक, परलोक सुधारे,
इसी राह चले ऋषि हमारे,
यही है सत्य–सनातन वैदिक आवाज,
आर्य समाज, आर्य समाज।।

आखें खोलो हठ की छोड़ो,
कमर–कस तुम उसके होलो,
तुष्टिकरण का मार्ग छोड़ कर,
पहचानों यूँ आत्मिक आवाज
यही है आर्य समाज, आर्य समाज।।

बलवीर सिंह मलिक
राजनगर, पालम कालोनी,
नई दिल्ली– 110077
मो. 9891580320

हमें सत्य को स्वीकार करना चाहिए

प्रिय पाठकवृन्द! अनाथाश्रम में पलने व रहने के कारण क्रांति वीर उधम सिंह का प्रारम्भिक जीवन नेता जी सुभाष भगतसिंह आदि की तरह सर्वजन के लिए ज्ञात नहीं था। अतः कवियों ने जनश्रुति के आधार पर ही इनका इतिहास लिखा था। बाद में बहुत सी बातें ज्ञात हुई, तो वीर उधमसिंह का बलिदान संकीर्णता (जलियांवाला बाग में मारे गये निर्दोष भारतीयों का बदला लिया) को प्राप्त हुआ। उधम सिंह का जन्म 26 सितम्बर 1899 को हुआ था। जब ये दो तीन वर्ष के थे, तो इनकी माता का देहांत हो गया। उधमसिंह और बड़ा भाई साधु सिंह का भी देहांत हो गया।

13 अप्रैल1919 को जलियाँवाला बाग के समारोह में अनाथाश्रम के बच्चों को सेवाकार्य में लगाया। वहाँ क्रूर डायर द्वारा किये गये नंरसंहार को देखकर उधमसिंह का खून खौल उठा और उसने मानवता के इस कलंक को मिटाने का संकल्प कर लिया, जो लगभग 21 वर्ष बाद पंजाब के पूर्व गवर्नर माइकल ओडवायर (जिसने जनरल डायर को गोलियाँ चलाने का आदेश दिया था) को मारकर पूरा हुआ, पर जनरल डायर कई वर्ष पूर्व ही लकवे से पीड़ित होकर मर चुका था।

आज भी कई बार पत्रिकाओं में यही लिखा जाता है कि उधमसिंह ने अपनी माता की प्रेरणा से जलियांवाला बाग में मारे गये अपने पिता का बदला लेने के लिए डायर को मारा था। ऐसा कहने वाले अनजाने में ही उधम सिंह के बलिदान को हेय सिद्ध करते हैं। हमें सत्य को स्वीकार करना चाहिए।

राजेशार्य आट्टा
1166, कच्चा किला
साढौरा (यमुनानगर)
हरि. 133204

भूल सुधार

खेद है कि दिनांक 23.9.2012 के आर्य जगत् के अंक में पृष्ठ संख्या 10 पर ''लन्दन से आर्य सज्जनों के नाम'' एक पत्र प्रकाशित किया गया है जिसमें भूलवश लेखक का नाम कृष्ण मोहन गोयल प्रकाशित हो गया है। पाठकों से निवेदन है कि वे इसके लेखक का नाम श्री ज्ञानेश्वर आर्य, पढ़ें।

– सम्पादक

☞ पृष्ठ 3 का शेष

उपनिषदों का....

When character is lost nothing is lost.

When health is lost something is lost.

When wealth is lost everything is lost.

"चरित्र चला गया तो कुछ नहीं गया, साधारण बात है। जाने दो इसे। स्वास्थ्य चला गया तो कुछ हानि हुई अवश्य, परन्तु धन चला गया तो सब–कुछ चला गया। अब विनाश–ही–विनाश है।" अब सब–कुछ उलटा हो गया है। जो सबसे ऊपर था वह सबसे नीचे था, वह सबसे ऊपर पहुँच गया है।

परन्तु आज की रीति हो या कल की, यह उचित तो नहीं है। सत्य यह है कि जो व्यक्ति अपने चरित्र को खो बैठता है उसका कोई मूल्य नहीं रहता। भले ही आज वह सुखी दिखाई देता हो, उसके पास धन–सम्पति सब–कुछ हो, परन्तु स्मरण रखो! उसके भीतरवाला उसे चैन से नहीं बैठने देगा। चोरी का विचार यदि मन में आया है तो उसका दण्ड मिलेगा अवश्य। रात्रि के समय स्वप्न आयेगा कि मैं चोरी करके भागा हूँ पीछे दूसरे लोग भागे आते, हैं; हाँपता–काँपता भागा चला जाता हूँ और धड़ाम से एक अन्धे कुएँ में जा गिरा हूँ। यह है मानसिक पाप का मानसिक दण्ड जो अन्दरवाला देता है। अतः उपनिषद् ने कहा– उत्तम चरित्रवाला बन। ऐसा नहीं करेगा तो कितना भी विद्वान क्यों न हो, तेरे मन को शान्ति नहीं मिलेगी। तेरा मन कभी ईश्वर में नहीं लगेगा। यह है उपनिषद् का तीसरा सन्देश।

और चौथा सन्देश वह है जिससे वास्तविक उपनिषद् आरम्भ होता है। दृढ़ संकल्प कर लिया। उत्तम विचार बना लिये। धन–उपार्जन कर लिया। त्याग से उसका भोग कर लिया। अपने चरित्र को भी पवित्र बना लिया तो इसके पश्चात् क्या करना? इसके पश्चात् उपनिषद् क्या कहते हैं? यहाँ से वास्तविक उपनिषद् आरम्भ होता है।

महर्षि याज्ञवल्क्य ने गार्गी को सम्बोधित करके कहा–

योवाएतदक्षरंगार्गीअविदित्वाऽस्मिंल्लोके जुहोति, यजते, तपस्तप्यते बहूनि वर्षसहस्त्राणि अन्तवदेवास्य तद् भवति।।

"सुनो गार्गी! सुनो गार्गी! यह अक्षर जो कभी नष्ट न होने वाला है, इसको जाने बिना कोई व्यक्ति कई सहस्र वर्ष तक भी यज्ञ करता है और तप करता है, उसका यह सब–कुछ अन्त में नष्ट होने वाला है, क्योंकि इनमें से किसी का फल भी सदा रहने वाला नहीं।" यह है उपनिषद् का चौथा सन्देश।

परन्तु कभी नाश न होने वाला यह अक्षर है क्या? यह किस बला का नाम है? यहाँ से उपनिषद् का वास्तविक सन्देश आरम्भ होता है। परन्तु अब तो समय हो गया पूरा, इसलिए इसका वर्णन कल करेंगे। ओ३म् तत् सत्।

क्रमशः.....

☞ पृष्ठ 7 का शेष

कर्मफल सिद्धांत–एक....

का व्यापार, कन्या भ्रूणहत्या का राष्ट्रव्यापी स्वरूप, वैश्यावृत्ति की निरंतर उत्तरोत्तर वृद्धि, समलैंगिकता की वृद्धि और उसके सामाजीकरण का हर स्तर पर जोर–शोर से प्रयास आदि अनेकानेक अकल्पित बुराईयां मनुष्य समाज मे व्याप्त हो चुकी हैं। महिलाएं अकेली बाज़ार जाने में डरती हैं। गिरोहबद्ध बाइक सवार चेन लुटेरे नए–नए तरीके आज़मा कर लूट पाट करते रहते हैं। अकेले बुजुर्ग नागरिक घर में हो तो उन्हें घातक हथियारों से मारकर लूट–पाट की घटनाऐं आए दिन मीडिया की सुर्खियां बनी हुई हैं।

इन करोड़ों लोगो को कैसे समझाया जा सकता है कि, यह 'हीरा जनम' अनमोल है। पौराणिक भी चौरासी लाख योनियों के बाद मनुष्य जन्म मिलना मानते हैं पर मनुष्य जन्म प्राप्त करना इतना कठिन दुर्लभ, इतना अनमोल नहीं लगता। 100–125 वर्षो में जनसंख्या पांच गुना बढ़ गई। आगामी 45–50 वर्षो में यह आठ गुना बढ़ जावेगी। जनसंख्या में यह बढ़ोतरी तुल्य पाप–पुण्य आत्माओं की स्वीकार करना सरलता से गले न उतरने वाली बात है।

आत्मा की स्वतंत्र सत्ता के नाम पर और उसके कार्यों पर नियत्रंण के अभाव में जो भयंकर नरसंहार देखने को मिले है और मिल रहे हैं, वे मनुष्य के मन मस्तिष्क पर अत्यन्त गहरा प्रभाव छोड़ते हैं और यह सोचने को बाध्य करते हैं कि यह अनियंत्रित, अतिमानवीय शक्ति इनके कर्ताओं को क्यों और किससे प्राप्त हुई? जर्मनी का तानाशाह हिटलर यहूदियों को जर्मनी का दुश्मन समझकर इतनी घृणा करता था कि, उसने यहूदियों का विनाश कर डाला। गोलियों से भुनवा डाला, शहरी के मांस का साबुन बनाने में प्रयोग किया गया और जब नरसंहार में इससे विलम्ब लगा तो गैस चैम्बरों में उन्हें निर्दयता पूर्वक खत्म किया गया इसी तरह रूस के तानाशाह स्टालिन ने साम्यवादी क्रान्ति की उपलब्धियों के विरोधियों को विकास कार्यकर्मों में बाधक लोगों को जिनकी संख्या दो करोड़ तक बताई जाती है, साईबेरिया के बर्फीले रेगिस्तान में जहां सर्दियों में तापमान ऋण (माईनस) 50 डिग्री सेलसियस तक चला जाता है, भेज दिया जाता था। यहां लोग असहनीय सर्दी में मर जाते थे अथवा ध्रुवीय भालुओं का भोजन बन जाते थे। कम्बोडिया में पोट पोल के नरसंहार की खोपड़ियाँ मीलों मे मिली है। क्या ये मृतक भी अपने पाप कर्मों को भोग रहे थे?

आधुनिक आंतकवाद ने सम्पूर्ण विश्व में कत्लेआम मचा रखा है। निर्दोष मानवों को अकाल मृत्यु में भेजा जा रहा है? क्या अप्रत्याशित, अवांछित मृत्यु को भी इनके पाप कर्मो का फल मानकर संतोष किया जा सकता है।

प्राकृतिक आपदाओं में हुई जनहानि को किसके पापों की परिणिति माना जावेगा? सुनामी ने लगभग 5 लाख लोगों को लील लिया था। क्या यह सर्वनाश पीड़ित लोगों के पापकर्मों का परिणाम था? प्रकृति द्वारा किये गये सर्वनाश के समाचार पूरे विश्व से प्राप्त होते रहते हैं। इसके अतिरिक्त प्रकृति में आई विकृतियों का परिणाम हर युग में मानव समुदाय को भोगना पड़ता है। एक समय टी.बी. मलेरिया आदि बीमारियाँ बड़ा नरसंहार करती थीं, आज भी डेंगू, मेननजाइटिस, एनसेफिलाईटिस, चिकनगुनिया और इन सबसे भयानक कैंसर कितनी पीड़ादायक मृत्यु दे रहा है, कल्पना से बाहर है। पूरे विश्व में कैन्सर का भयंकर आतंक मचा हुआ है। क्या ये सब बीमारियाँ मानवीय सर्वनाश के लिये उनके पापों को भोगने के लिये, नये अस्त्र शस्त्र के रूप में ईश्वर द्वारा प्रयोग में लाई जा रही हैं या ये प्राकृतिक विकृतियाँ प्रकृति के ''स्वतंत्र अस्तित्व'' होने के कारण परमात्मा के हस्तक्षेप से मुक्त हैं।

मेरी समझ में तो कर्मफल सिद्धान्त और पाप–पुण्य की अवधारणा, मनुष्य की मूल दुर्दमनीय प्रवृत्तियों, काम–क्रोध, लोभ, मोह, मद–मत्सर पर नियत्रंण लगाने का मनीषियों द्वारा विचार हुआ आयोजन है जिससे मानव का जीवन पशु जीवन से पृथक् होकर एक वैशिष्ट्य को प्राप्त करके सह–अस्तित्व, प्रेम, भाई–चारे और विश्व शांति का कारण बने।

22– नगर निगम क्वार्टस
जीवाजी गंज
लश्कर गवालियर
474001

☞ पृष्ठ 8 का शेष

महाराणा प्रताप – कहानी....

कौड़ी भी नहीं बची।"

'वीर शिरोमणि महाराणा प्रतापसिंह' में श्री ओझा जी ने लिखा है– "हम ऊपर बतला चुके हैं कि महाराणा उदयसिंह, प्रतापसिंह और अमरसिंह को तो संपति संचित करने का अवकाश ही नहीं मिला। महाराणा कर्ण सिंह अपने उजड़े हुए राज्य को आबाद करने में ही लगा रहा। महाराणा जगतसिंह और राजसिंह को बाहर से कोई बड़ी सम्पत्ति नहीं मिली। अतः यह यह कहना अप्रासंगिक न होगा कि यह सारी सम्पत्ति कुंभा और सांगा की संग्रह की हुई थी और महाराणा प्रताप सिंह के समय ज्यों की त्यों विद्यमान थी। ऐसी दशा में यह मानना कि प्रताप सिंह के पास अकबर के साथ लड़ाइयों के समय सेना का खर्च चलाने के लिये कुछ भी द्रव्य न था, जिससे वह मेवाड़ छोड़कर सिन्ध में राज्य स्थापित करने जा रहा था, परन्तु मंत्री भामाशाह ने ....., सर्वथा निर्मूल है।"

हाँ, चतुर मंत्री भामाशाह राज्य का खजाना सुरक्षित स्थानों में गुप्त रूप से रखवाया करता था, जिसका ब्यौरा वह अपनी एक बही में रखता था। उन्हीं स्थानों में (से) आवश्यकतानुसार द्रव्य निकाल वह लड़ाई का खर्च चलाता था।

महाराणा प्रताप द्वारा अकबर की अधीनता करते हुए पत्र लिखना आदि ऐसे अनेक प्रसंग हैं, जिनकी समीक्षा मैंने "स्वाभिमान का प्रतीक–मेवाड़' में प्रसिद्ध इतिहासकारों के प्रमाणों के साथ की है जिसे 'शान्तिधर्मी' जीन्द, दर्शन योग महाविद्यालय रोजड़ (गुजरात) व वैदिक मिशन ट्रस्ट प्रांसला, राजकोट (गुजरात) ने हजारों की संख्या में हिन्दी व गुजराती में छपवाया है। प्रस्तुत लेख किसी से व्यक्तिगत वाद–विवाद हेतु या किसी दुर्भावना से नहीं लिखा हैं। सत्य के प्रचार हेतु विद्वानों की सेवा में नम्र सा निवेदन है।

इति

1166, कच्चा किला
साढौरा (यमुनानगर)
हरि. 133204

Delhi Postal R. No. D.L. (ND)-11/6066/2012-14
अग्रिम अदायगी के बिना भेजने का लाइसैंस नं. U(C)-103/2012-14
POSTED AT N.D.P.S.O. ON 10-11/10/2012
रजिस्ट्रेशन नं. आर0 एन0 आई0 39/57

डी.ए.वी. करनाल में कविता एवं कहानी प्रतियोगिता आयोजित हुई

डी.ए.वी. सैन्टेनरी पब्लिक स्कूल इन्द्री रोड़ करनाल में क्षेत्रीय स्तर पर प्राथमिक कक्षाओं के छात्र–छात्राओं के लिए कविता एवं कहानी प्रतियोगिता का आयोजन हुआ। इस कार्यक्रम का शुभारम्भ करनाल के एस.एस.पी. श्री शंशाक आनन्द जी के कर–कमलों द्वारा किया गया। प्रतियोगिता में कै. थल जोन के अन्तर्गत आने वाले सभी विद्यालयों के प्रतिभागियों ने भाग लिया। कार्यक्रम में निर्णायिका का कार्यभार डी.ए.वी.पी.जी. कॉलेज की प्राध्यापिका श्रीमती सविता एवं श्रीमती एस. शुक्ला ने निभाया। नन्हे प्रतिभागियों ने अपनी कला का प्रदर्शन विभिन्न विषय–वस्तुओं के प्रयोग द्वारा किया। विद्यालय की मैनेजर श्री मती राशी मनचन्दा ने इस कार्यक्रम की भूरि–भूरि प्रंशसा की तथा बच्चों एवं शिक्षकों का उत्साह बढ़ाया। कहानी वाचन में डी.ए.वी. सैन्टेनरी पब्लिक स्कूल, इन्द्रीरोड़, की नन्दिता ने प्रथम, डी.ए.वी. कुरुक्षेत्र की सारा ने द्वितीय एवं डी.ए.वी. कैथल के पार्थ ने तृतीय, कविता पाठ में डी.ए.वी. चीका की छात्रा अदिति वर्मा ने प्रथम, डी.ए.वी. करनाल इन्द्री रोड़ की कृतिका ने द्वितीय एवं डी.ए.वी. कुरूक्षेत्र की श्रुति ने तृतीय स्थान प्राप्त किया। सर्वश्रेष्ठ पुरस्कार डी.ए.वी. सैन्टेनरी पब्लिक स्कूल इन्द्रीरोड़ को प्राप्त हुआ। क्षेत्रीय निर्देशिका श्री मती सुमन निझावन ने बच्चों का उत्साहवद्र्धन करते हुए पुरस्कार वितरण किया। विद्यालय की प्रधानाचार्या डॉ. वन्दना गुप्ता ने आए हुए सभी अतिथिगण के प्रति आभार प्रकट किया तथा व्यक्तितव के विकास के लिए इस तरह के कार्यक्रमों का आयोजन भावी जीवन में भी करते रहने के लिए बच्चों को प्रेरित किया।

डी.ए.वी. मॉडल टाऊन, अम्बाला शहर में हुआ वन महोत्सव

डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल, मॉडल टाऊन, अम्बाला शहर के प्राँगण में वनमहोत्सव अत्यंत उत्साह व हर्षोल्लास के साथ मनाया गया। प्रतिवर्ष की भांति इस वर्ष भी विद्यार्थी व अध्यापक वर्ग ने वृक्षारोपण किया। प्राचार्य श्री मनोज शर्मा ने पर्यावरण के प्रती जागरुकता, प्रदूषण मुक्त एवं स्वच्छ पर्यावरण का संदेश दिया और अपील की कि छात्र पर्यावरण सुरक्षा के प्रति सचेत रहें। प्रार्थना सभा में उन्होंने अपने संबोधन में सबको अधिक से अधिक पौधे लगाने और उनकी देखभाल करने की प्रेरणा दी। पोस्टर मेकिंग और कोलाज मेकिंग जैसी प्रतियोगिताएँ भी विद्यालय में आयोजित की गईं। कार्यक्रम के दौरान चमेली और डेहलिया जैसे पौधे लगाए गए। रोगनिवारक पौधों में तुलसी, नीम और एलोवीरा जैसे पौधे लगाए गए। इसके साथ–साथ कुछ सौंदर्यवद्र्धक पौधे जैसे है विस्कस, क्रिसमस ट्री व क्रॉटन पाम भी लगाए गए। प्रधानाचार्य महोदय ने छात्रों, शिक्षकों व अभिभावकों के इस प्रयास व सहयोग को प्रशंसनीय बताते हुए सबको बधाई व शुभाशीष दी और उन्हें इसी प्रकार पौधारोपण, पेड़ न काटने तथा उनके संरक्षण के लिए प्रेरित किया।

डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल, फिल्लौर में देशभक्ति गीत गायन प्रतियोगिता का आयोजन

गत दिनों डीआरवी डी.ए.वी. शताब्दी सीनियर सैकेंडरी पब्लिक स्कूल फिल्लौर में देश भक्ति गीत गायन प्रतियोगिता का आयोजन किया गया। इस प्रतियोगिता में छठी कक्षा के विद्यार्थियों ने भाग लिया। उन्होंने देश प्रेम, शहीदों के बलिदान, प्राचीन समृद्धि, स्वामी दयानंक के महान कार्यों एवं तिरंगे झंडे की महानता का बखान करते हुए अनेक गीत प्रस्तुत किए। विद्यार्थियों के स्वर में भारतीय होने का गर्व साफ झलक रहा था। प्रधानाचार्य श्री योगेश गंभीर ने प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय स्थान प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों को पुरस्कार तथा प्रमाण–पत्र प्रदान किए। इस अवसर पर उन्होंने कहा कि देश प्रेम का भाव मनुष्य में देश के प्रति गर्व का अनुभव कराता है परंतु हमें अपने अधिकारों के साथ–साथ कर्तव्यों के प्रति भी सजग रहना होगा तभी हम देश के सच्चे नागरिक कहलाने के अधिकारी होंगे।

मुद्रक व प्रकाशक – **श्री प्रबोध महाजन,** सभा मंत्री द्वारा **मदन गोयल** के प्रबंध में **अरावली प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स (प्रा.) लि.,** डब्ल्यू–30, ओखला, फेस–II, नई दिल्ली–110020 (दूरभाष : 26388830–32) से मुद्रित कार्यालय **'आर्य जगत्'** आर्यसमाज भवन, मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली–110001 से प्रकाशित। स्वामित्व – आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा, मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली–110001 (दूरभाष : 23362110, 23360059) सम्पादक – **श्री पूनम सूरी**